साक्षात्कार

संयुक्तांक : 514-515
अप्रैल-मई, 2023

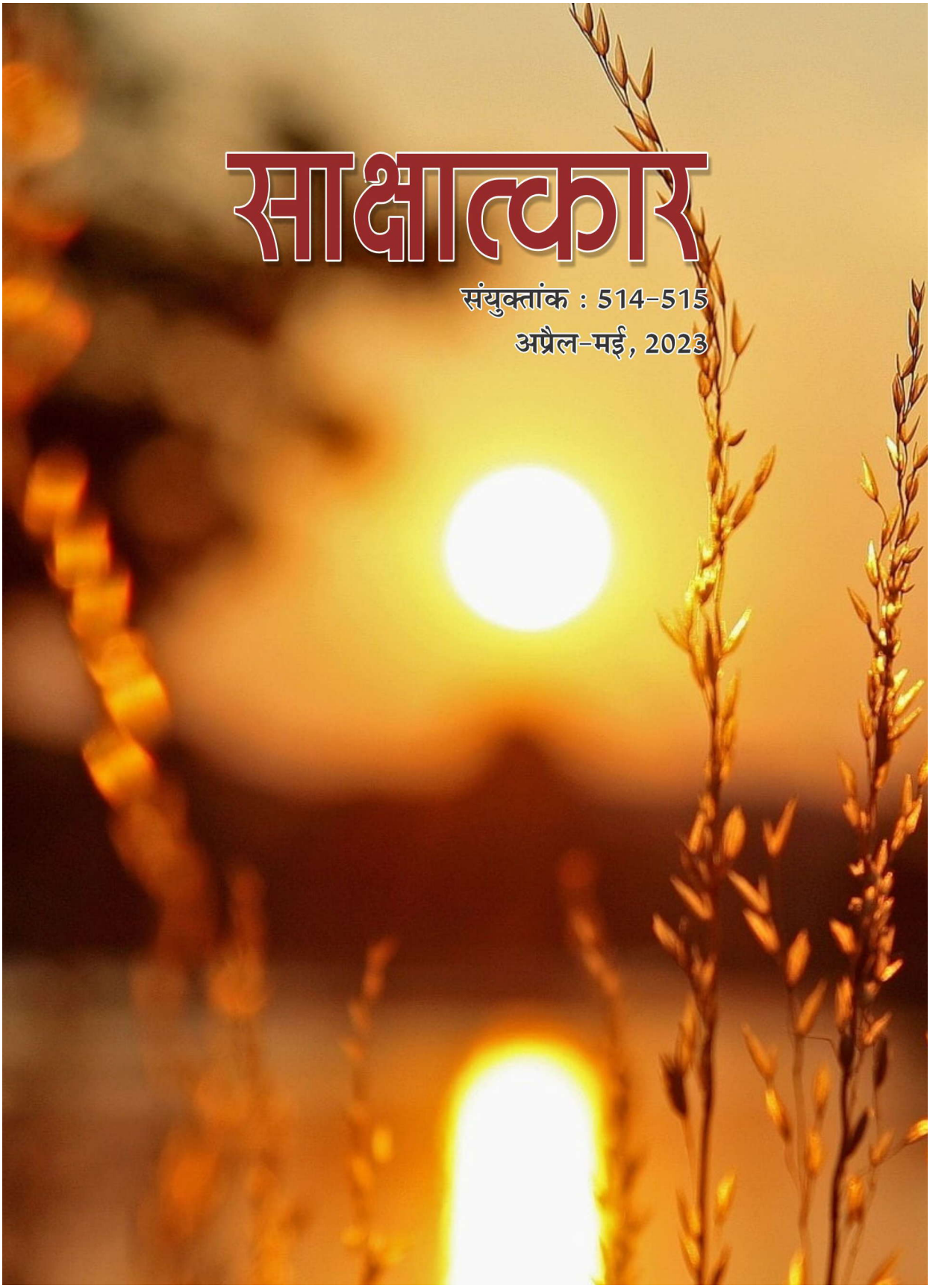

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

अप्रैल-मई, 2023
संयुक्तांक : 514-515

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755-2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3, 000

यह अंक : ₹ 50 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पहलवानी में साहित्य और साहित्य में पहलवानी // 05

बातचीत

रश्मि रमानी से डॉ. विकास दवे की बातचीत // 07

आलेख

डॉ. विजयानन्द भारतीय साहित्य में भारतीय नदियाँ // 13

मनोज जैन संकल्प रथ के अपराजेय महारथी : राम अधीर // 18

डॉ. देवेंद्र तोमर दोनों इक दूजे के लिए // 24

डॉ. नरेन्द्र कुमार मेहता श्रीराम की बारात में महिलाओं की सहभागिता // 28

डॉ. पराक्रम सिंह वर्तमान समय में प्रासंगिक होते कबीर // 34

महावीर रवांल्टा हिन्दी के विकास एवं संवर्धन में गैर सरकारी संस्थाओं का योगदान // 37

डॉ. मनीष काले/डॉ. सोनाली नरगुन्दे कर्मवीर से झलकता है दादा का पूरा व्यक्तित्व // 40

प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा शिप्रा-चंबल संगम 'शिपावरा': मानवीय सभ्यता की पुरातन स्थली // 44

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल' हिन्दी कवि सम्मेलन शताब्दी : कानपुर से गूगल हेड क्वाटर तक // 48

कमल किशोर गोयनका श्री गुरु गोलवलकर का भाषा-चिंतन // 53

डॉ. सुमन चौरे संयुक्त परिवार : भारतीय संस्कृति की आत्मा // 60

डॉ. (सुश्री) शरद सिंह वैदिक वाङ्मय में जल की महत्ता एवं जल संरक्षण // 66

ललित निबंध

हेमंत उपाध्याय पुराने कोट व तापड़ी की याद // 70

डॉ. मनीष चौरे अपना गाँव // 72

संस्मरण

सुधा रानी तैलंग संघर्ष शील व संकल्पवान व्यक्तित्व // 75

कविताएँ

डॉ. रामनिवास 'मानव' वे नहीं रहे // 78
सुषमा गजापुरे नदी मर रही है // 80

व्यंग्य

डॉ. आर.एस. खरे ऑनलाइन श्रद्धांजलि // 82

कहानी

डॉ. ममता चंद्रशेखर वियतनामी नारियल पानी // 85
प्रभा पारीक इच्छायें // 91

लघुकथा

डॉ. चंद्रा सायता आज भी... // 94
शशि पुरवार बुढ़ापे का बोझ // 96
यशोधरा भटनागर रोटी // 98

समीक्षा

अंतरा करवड़े पेड़ तथा अन्य कहानियाँ // 100
डॉ. शकुंतला कालरा स्त्री विमर्श की सच्चाइयों की सशक्त कहानियाँ // 102
डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया साहित्य में महाराजा छत्रसाल // 104
डॉ. संदीप अवस्थी अंतर्ध्वनि // 106
रमाकांत नीलकंठ जीवन का रेशा-रेशा उधेड़ने वाली आत्मकथा // 109
घनश्याम मैथिल 'अमृत' समकालीन यथार्थ से मुठभेड़ करती पैनी लघुकथाएँ // 113
डॉ. रमेश चन्द्र शाह मर्यादा कानूनों की // 115
चिट्ठी // 117

पहलवानी में साहित्य और साहित्य में पहलवानी

विगत दिनों देश की राजधानी दिल्ली में एक लंबे समय से क्रीड़ा क्षेत्र की कुछ बहनें धरने पर बैठी हुई हैं। स्वाभाविक रूप से उनकी अपनी कुछ माँगें हैं जो प्रथम दृष्टया संपूर्ण देश की बहनों की शुचिता और मर्यादा से जुड़ी हुई दिखाई दे रही हैं। उनके आरोपों की सच्चाई तो न्यायपालिका ही तय करेगी किन्तु भारतीय जनमानस सहज रूप से ऐसे विषयों को लेकर संवेदनशील रहता आया है। इसलिए हम सब भी पहलवान बहनों के साथ खड़े हैं यदि इस विषय में कोई राजनीति न हो।

देश की किसी भी बेटी के साथ किसी भी व्यक्ति के द्वारा छोटा या बड़ा कदाचरण किया जाना संपूर्ण देश के मुँह पर तमाचा जैसा ही है।

आप कहेंगे साहित्यिक पत्रिका में मुझे इस विषय को उठाने की आवश्यकता क्यों लगी? वास्तव में हुआ यह कि इन बहनों के समर्थन में विगत दिनों साहित्य क्षेत्र के कुछ चेहरे भी मैदान में उतरे। प्रगतिशील लेखक संघ दिल्ली से जुड़े ये दो चेहरे भी गये थे पहलवान बहनों के समर्थन में।

आप कहेंगे इतने संवेदनशील विषय पर साहित्यकारों का मैदान पकड़ना स्वाभाविक है क्योंकि साहित्य तो होता ही संवेदनशील है फिर ऐसे मुद्दों पर भला साहित्यकार चुप क्यों रहे? किंतु आगे जब आप जानेंगे कि वह चेहरे स्वयं अपने निजी जीवन में कितने शुचिता और मर्यादा का पालन करने वाले रहे हैं तो आप भी इस बजबजाती राक्षसी मानसिकता से ठीक ढंग से सुपरिचित हो सकेंगे।

इनमें से एक साहित्यकार खुद ही घोषित कर चुके हैं कि उन्होंने इमरजेंसी के दौरान सरकारी गेस्ट हॉउस में जनजातीय लड़कियों का यौन शोषण किया था।

दूसरे सज्जन जो वहाँ नैतिकता की डुगडुगी बजाने पहुँचे थे उनकी भी गाथा पूरा देश जानता है। एक लड़की इनके कुलपति रहते एक प्रोफेसर के घर से रोते हुए भागी थी। सीधे विद्यार्थियों के धरना स्थल पर। आप सोच रहे होंगे नैतिकतावादी सज्जन के कुलपति रहते हुए निश्चय ही दोषी व्यक्ति के विरुद्ध कठोर कार्यवाही इन्होंने की होगी किंतु ऐसा हुआ नहीं था। दूसरे दिन उस दोषी प्राध्यापक को लेकर वे मॉर्निंग वॉक पर निकल पड़े थे। लड़की को डाँट-डपट कर शिकायत नहीं करने की समझाइश साहित्यिक भाषा में देकर आये और छः महीने बाद उसे वहाँ से पलायन करने पर मजबूर कर दिया। घटना वाले दिन धरने पर जनजातियों के लड़के-लड़कियाँ बैठे हुए थे, हालाँकि रोते हुए वहाँ आने वाली लड़की सवर्ण थी पर गंभीर विषय होने के कारण सब बच्चे इन सज्जन के विरुद्ध एकजुट हुए थे।

जिस प्रगतिशील लेखक संघ ने इनका बहिष्कार ही इसलिए किया था कि इन महाशय ने लेखिकाओं

को 'छिनाल' (पाठक मुझे क्षमा करें) गाली दी थी। यह बात अलग है कि बाद में उनके संगठन ने उनकी इस भूल को भुलाकर इन्हें फिर से अपनी गोद में बैठा लिया था।

पाठक कहेंगे कि मैं वैचारिक द्वेष के चलते इस प्रकार की मनगढ़ंत बातें कर रहा हूँ किंतु जिन्हें मेरे इन कथनों पर विश्वास नहीं है, वह हंस के कुछ पुराने अंक निकलवा कर देख लें जिसमें इन साहित्यकार महानुभाव ने जनजातीय बेटियों के साथ किये गए उनके दुराचरण पर अपना 'इक़बाल ए जुर्म' व्यक्त किया था। हंस में उन्होंने अत्यंत घृणित ढंग से चटखारे लेकर बताया था कि किस तरह शोषण करने के दौरान जनजातीय ललना के स्तन से दूध निकल आया था।

ऐसे पतित लोग जब स्त्रियों के संदर्भ में आवाज़ उठाते दिखेंगे तो शेष साहित्य जगत को कष्ट होना स्वाभाविक है।

मुझे दिल्ली के अनेक साहित्यकार मित्रों के संदेश मिले कि आप ही इन दोमुँहे सर्पों को नग्न कर सकते हैं।

हालाँकि यह सब लिखते हुए शब्दों की मर्यादा भंग भी हुई है पर ये सब उन लोगों ने कहा, लिखा और प्रकाशित किया था प्रगतिशीलता के नाम पर।

इन शब्दों को लिखे बगैर आप इन चेहरों की कालिख को ठीक से समझ नहीं पाएँगे।

साहित्य में वाममार्गी स्त्री विमर्श के इन पैरोकारों को जानिये, समझिए और फिर इनसे प्रभावित होइए।

एक मर्यादित समाज और शुचितापूर्ण साहित्य जगत को इतना संवेदनशील तो होना ही पड़ेगा।

सदैव सा

-डॉ. विकास दवे

संपादक एवं निदेशक

साहित्य अकादमी (म.प्र.)

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्यिक यात्रा और रचनाकर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।–सम्पादक

रश्मि रमानी से डॉ. विकास दवे की बातचीत

घर के चूल्हे–चौके को सँभालते हाथों में कलम की शक्ति, वरिष्ठ लेखिका रश्मि रमानी हिंदी और सिंधी साहित्य में प्रमुख हस्ताक्षर मानी जाती हैं। हिंदी एवं सिंधी में वे अब तक कविता, अनुवाद, आलोचना, बाल–साहित्य एवं लोक–साहित्य की 30 पुस्तकें लिख चुकी हैं, किंतु यह सब उन्हें सरलता से प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि इसके पीछे पीड़ा और संघर्ष की एक महागाथा छिपी हुई है। वे अपने साहित्यिक जीवन को 'कतरनों का वंदनवार' कहती हैं। हवा के हर झोंके के साथ, वे उनकी उपलब्धियों का अहसास कराने के साथ–साथ संघर्ष भरे अतीत की चौखट पर ला खड़ा कर देती हैं। उनका साक्षात्कार इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि उन्हें अभी म. प्र. सिन्धी साहित्य अकादमी का कृति सम्मान भी प्राप्त हुआ है। उनसे बातचीत हिंदी और सिन्धी भाषा के अनुवाद क्षेत्र में नए सेतु का निर्माण करेगी।

डॉ. विकास दवे : सबसे पहले आपके जन्म और बाल्यकाल के विषय में जानने की इच्छा है। बचपन की यादों को हमारे लिए खँगालिए।

रश्मि रमानी : मेरा जन्म इंदौर, म.प्र. में अप्रैल 1960 में हुआ। मेरे पिताजी श्री लीलाराम भागचंदानी सरकारी नौकरी में थे और माता लाजवंती जी एक कुशल गृहिणी थीं। मेरा परिवार 1947 के भारत विभाजन के समय, सिंध (पाकिस्तान) से विस्थापित होकर भारत आया था। माँ संपन्न परिवार से थीं लेकिन बँटवारे के बाद सब बिखर गया। पाँच भाई–बहनों में सबसे बड़ी मैं थी और दुर्भाग्य से मेरी दो छोटी बहनें जन्म के अल्प समय के बाद गुजर गईं, जिसके कारण परिवार में मुझे बहुत ही लाड़–प्यार और एहतियात से रखा गया। नि:संदेह भाइयों की तुलना में मेरी परवरिश ज़्यादा बेहतर हुई। उन दिनों लड़कियों की पढ़ाई को लेकर कोई उन्नत अवधारणा नहीं थी, लेकिन माता–पिता ने पढ़ाई में कोई रुकावट नहीं आने दी।

डॉ. विकास दवे : शिक्षा की आपकी रुचि कैसे विकसित हुई? प्रारंभिक शिक्षा के विषय में कुछ बताइए?

रश्मि रमानी : मेरी प्रारंभिक शिक्षा मंदसौर में हुई, और हायर सेकेंडरी रतलाम से की। सरकारी नौकरी में तबादला होने पर, पिता जहाँ जाते, परिवार भी उनके साथ जाता। मेरी माँ एक सुलझी हुई खुशमिजाज महिला थीं। कम पैसों में घर को सुचारु रूप से चलाना उन्हें बखूबी आता था। वैसे एक मध्यमवर्गीय परिवार की जो भी चुनौतियाँ होती हैं उसका सामना तो मेरा परिवार कर ही रहा था। मेरे ननिहाल में धार्मिक पुस्तकों का विशाल भंडार था। पिताजी पाँच भाषाएँ जानते थे। माँ-पिताजी दोनों की पढ़ने में रुचि थी। इसके अलावा स्कूल के सामने एक व्यक्ति हिन्दी में अनूदित रूसी पत्रिकाएँ और पुस्तकें बेचता था, उनके चित्र रंग-बिरंगे होते थे, और वे सस्ती भी होती थीं, जिन्हें खरीदने में मुझे मुश्किल नहीं होती थी। बचपन में किताबों का मेरा संसार यही था। बचपन में हालाँकि मैं बहुत ही दुबली-पतली सी थी लेकिन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विशेषकर वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में खूब बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती थी। मात्र 12 साल की थी जब एक बाल-पत्रिका में मेरी पहली कहानी प्रकाशित हुई। पढ़ाई में मैं ठीक-ठाक ही थी, लेकिन स्कूली किताबों से इतर मुझे पढ़ने का भारी शौक था। दो-तीन सरकारी और निजी पुस्तकालयों की सदस्य थी, जहाँ से मैं मनपसंद किताबें लाती।

डॉ. विकास दवे : इन दिनों बच्चों ने पढ़ना-लिखना बिलकुल छोड़ दिया है, ऐसे में उस युग में आपकी स्वाध्यायी अभिरुचि का आप पर कुछ प्रभाव पड़ा?

रश्मि रमानी : ये किताबें मेरे भीतर एक अलग ही दुनिया बना रही थीं, जिसके बारे में मेरे सिवा कोई नहीं जानता था, या फिर यह कहना चाहिए कि ठीक-ठीक तो मुझे भी पता नहीं था। वर्ष 1976 में हायर सेकेंडरी करने के बाद, मैंने रतलाम के गवर्नमेंट गर्ल्स डिग्री कॉलेज में दाखिला लिया। वहाँ हिन्दी साहित्य, इतिहास, अंग्रेजी और अर्थशास्त्र विषयों ने जैसे मेरी विचार भूमि का निर्माण किया। लेकिन वे विषय मात्र पढ़ने के लिए ही थे, जिसे मैं बड़ी ईमानदारी से निभा रही थी। साहित्य से लगाव था इसलिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों विषयों से बड़ी स्नेहिल-सी दोस्ती हुई और सन् 1979 में मैंने स्नातक की उपाधि हासिल कर ली। ग्रेजुएशन के होते ही रतलाम कलेक्ट्रेट में मेरी नौकरी लग गयी थी।

डॉ. विकास दवे : एक बेटी उस युग में नौकरी करे यह बड़ा उन्नत दृश्य है। कठिनाई नहीं आई कुछ भी?

रश्मि रमानी : क्यों नहीं आई? इधर कॉलेज में प्रवेश लेते ही घरेलू स्तर पर समस्याओं की शुरुआत हो गयी, क्योंकि घर में रिश्ते आने लगे थे। मेरी चचेरी, ममेरी और मौसेरी बहनें 17-18 की उम्र में शादी करके घर बसा चुकी थीं, और जब तक मेरा ग्रेजुएशन पूरा हुआ, तब तक मेरी बहनें एक-दो बच्चों की माँ बन चुकी थीं। मेरी माँ की भी यही इच्छा थी लेकिन मैंने हिंदी साहित्य से स्नातकोत्तर करने का फैसला किया। क्योंकि मैं प्रोफेसर बनना चाहती थी। सो मेरी पढ़ाई और नौकरी दोनों साथ-साथ चलने लगीं। 1981 में मेरी एम.ए. की पढ़ाई पूरी हुई, उससे पहले ही बहुत ही अच्छे वेतन में मेरी नियुक्ति म.प्र. विद्युत मंडल में हो गई। पुरानी नौकरी छोड़कर मैंने नई जगह आमद दे दी। यह वह दौर था जब मैं आत्मविश्वास से भरी हुई थी।

डॉ. विकास दवे : विवाह तो उस युग में माता पिता की सहमति से ही होते थे। आप ठहरीं स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी। विवाह के बारे में कुछ बताइए?

रश्मि रमानी : उसी दौरान कुछ और महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। मेरी मुलाकात अश्विनी कुमार रमानी से अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अधिवेशन इंदौर के दौरान हुई। मैं भी छात्र संघ की सचिव थी, जबकि रमानी साहब इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ाई कर रहे थे। पहली मुलाकात में मुझे लगा कि वे तो बहुत ही जीनियस हैं और यह सच भी था। रमानी साहब मेरिट में पंजाब बोर्ड में पाँचवाँ स्थान रखते थे। उनके पिता रेलवे में कार्यरत थे। 1977 में रमानी साहब से हुई वह एक सामान्य-सी मुलाकात थी। इसके बाद वर्ष 1978 में वे मुझसे फिर मिले और इस बार 'प्रपोज' कर दिया। मैंने कहा इस तरह के प्रस्ताव में मेरा यकीन नहीं है, मैं तो बस शादी को ही मानती हूँ। इसके बाद रमानी साहब की नौकरी लग गई और वे बैंगलोर चले गए। 1982 में रमानी जी फिर आए लेकिन इस बार उन्होंने विवाह प्रस्ताव रखा जिसे सहज ही परिवार ने स्वीकार कर लिया। परिवार की ओर से भी आपत्ति नहीं हुई लेकिन तब तक मैं पी.एच-डी. के लिए अपना पंजीयन करवाने के बाद उस पर काम शुरू कर चुकी थी। एक-दो अध्याय का लेखन कार्य शेष था, 16 जनवरी 1983 को मेरा विवाह हो गया, और मैं इसरो में कार्यरत अपने पति के साथ बैंगलौर आ गयी।

डॉ. विकास दवे : विवाह के बाद तो दु:ख भरे दिन बीते रे भैय्या अब सुख आयो रे.... गाने का समय था या संघर्षों ने पीछा नहीं छोड़ा?

रश्मि रमानी : अमूमन विवाह के बाद के कुछ महीने या साल जीवन के सबसे खूबसूरत दिनों में गिने जाते हैं, जबकि मेरा जीवन रोलर-कोस्टर बन गया। विवाह के सातवें दिन ही पिता चल बसे, डेढ़-दो महीने बाद मेरे एक भाई की ट्रेन दुर्घटना में मृत्यु हो गई। इसी सदमे में तीन महीने व्यतीत हो गए जो असीम दुखों के बाद भी पति के साथ बिताए गए सुनहरे पल थे। कुछ समय के बाद मेरे पति महू में स्थित मिलिट्री कॉलेज में आ गए। वे रोजाना इंदौर से महू आना-जाना करते थे। इस कारण मैंने नौकरी से लम्बी छुट्टी ले ली, लेकिन मैं फिर नौकरी में लौट न सकी, न ही मेरी पी.एच-डी. पूरी हो सकी। इंदौर में बड़े संयुक्त परिवार में मुझसे मात्र एक आदर्श बहू बनकर रहने की अपेक्षा की गई और इस तरह रसोईघर मेरा पूर्णकालिक कार्यस्थल बन गया। हालाँकि घूँघट का प्रतिबन्ध नहीं था। सबसे दुखद बात यह थी कि किताबों से नाता टूट गया। शिक्षित परिवार होने के बावजूद पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकों के प्रति मेरे ससुराल में किसी को रुचि नहीं थी। मुझे भी यह रियायत नहीं थी कि किताबें खरीद सकूँ। पति अपना सारा पैसा या तो स्वयं रखते या परिवार को दे देते। छोटे-मोटे खर्चे के लिए भी मेरे पास पर्याप्त पैसे नहीं होते थे। लेकिन किसी चीज की कमी भी नहीं रखी गयी। यह एक विचित्र, किंतु त्रासद स्थिति थी कि यात्राओं के शौकीन पति मुझे तरह-तरह के उपहारों से लाद देते, लेकिन मेरे पास खर्चने के लिए पैसों की तंगी बनी रही। जब सभी रास्ते बंद हो गए तब कलम ने सहारा दिया। मैं फिर से कविताएँ लिखने लगी। इस नीरस और बोझिल जीवन में खुशियाँ तब आईं जब पहली बच्ची का जन्म हुआ, लेकिन यह भी किसी अपराध से कम नहीं था, क्योंकि परिवार को बेटे की उम्मीद थी। दूसरी बच्ची के समय मुझ पर लिंग परीक्षण का दबाव डाला गया जिसे मैंने नकार दिया। इसके बाद तो मेरी जिंदगी मुश्किल होती चली

गई। पति हर नई नौकरी के साथ सफलता की नयी सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, जबकि मेरे लिए तमाम रास्ते तब तक बंद हो चुके थे। एक बार मैंने अपनी कविताएँ एक पत्रिका को भेज दीं और वे छप गईं, उससे कुछ पैसे भी मिले। मेरी हिम्मत बढ़ी और अन्य पत्रिकाओं में भी कविताएँ भेजनी शुरू कर दीं। यह शुरुआत बंद दरवाजे की झिर्रियों से आ रही सूरज की किरणों की तरह थी। लेखन ने मुझे न केवल संबल दिया बल्कि आत्मविश्वास का भी संचार किया। अब मैं अपने पैसों से किताबें और पत्रिकाएँ खरीदने लगी। हालाँकि पढ़ने के बाद उन्हें मैं कूलर में या घर के स्टोर रूम में छिपा देती। लिखने-पढ़ने के लिए चारों ओर से तानों की भी बरसात होने लगी लेकिन बहुत धीरे ही सही, उम्मीद दरवाजे पर दस्तक दे रही थी।

डॉ. विकास दवे : लेखन का उपयोग जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी हुआ? इस लेखन को मान्यता मिलना कब प्रारंभ हुई?

रश्मि रमानी : आकाशवाणी इंदौर केंद्र घर के पास ही था, एक दिन यूँ ही अपनी कविताएँ आकाशवाणी केंद्र को डाक से भेज दीं। उसके बाद से कविता पाठ के लिए आकाशवाणी से भी बुलावा आने लगा। आगे चलकर मैंने कैजुअल अनाउंसर की परीक्षा भी पास कर ली। वर्ष 1995 में उदय भारती राष्ट्रीय युवा कविता पुरस्कार, वर्णमाला ओड़िशा से पुरस्कृत किया गया लेकिन मैं पुरस्कार समारोह में सम्मिलित नहीं हो सकी क्योंकि, मुझे भुवनेश्वर (ओड़िशा) लेकर जाने वाला कोई नहीं था। इसके अलावा किसी को विश्वास भी नहीं था कि मैं पुरस्कृत हो सकती हूँ। कुछ दिनों के बाद मेरे पास पुरस्कार की राशि 5000 रुपए भेज दी गई। फोन पर मेरा साक्षात्कार लिया गया। इसके बाद मेरे पति विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में चार वर्षों के लिए यूनिवर्सिटी पुत्रा, मलेशिया गए, पति और दोनों बच्चों के साथ मैं भी वहाँ गई। इस बीच ननदों का विवाह हो गया और ससुर भी चल बसे। मेरी सास अपने दूसरे पुत्र के साथ रहने लगी थीं। मलेशिया से लौटने के बाद मुझे पता चला कि म.प्र. साहित्य परिषद् म.प्र. के लेखकों की पहली पांडुलिपि को प्रकाशित करती है। मैंने अपनी पांडुलिपि उन्हें भेज दी। लम्बे समय तक कुछ नहीं हुआ। एक बार मैं अपने पति के साथ भोपाल आई क्योंकि पतिदेव को राधाकृष्णन् सम्मान से सम्मानित किया जाना था। जब मैं साहित्य परिषद् में अपनी पाण्डुलिपि के बारे में पता करने पहुँची तो देखा कि उसका तो लिफाफा भी नहीं खुला था। मैंने उसी पाण्डुलिपि को 'साज चुप है' के नाम से प्रकाशित करने के लिए दोबारा आवेदन किया जो अनुदान प्राप्त हो जाने के बाद वर्ष 1997 में प्रकाशित हो गई। इस पुस्तक को केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली ने पुरस्कृत किया। अब तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मेरी पूछ-परख होने लगी थी। अब मैं विजिटिंग प्रोफेसर के तौर पर कॉलेजों में पढ़ाने लगी। पति की इच्छा यह थी उनके घर से निकलते और लौटते समय, बच्चों के स्कूल से लौटते समय मुझे अनिवार्य रूप से घर में रहना है। नौकरी के साथ इस इच्छा का निर्वाह मुश्किल नहीं था। मेरी किताबें भी छपने लगीं, हिन्दी के साथ अब मैं सिन्धी में भी हाथ आजमाने लगी थी। सिन्धी लिपि सीखने में एक महिला ने मदद की जो महज चौथी पास थी। इसके बाद मैंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

डॉ. विकास दवे : सिन्धी और हिंदी के मध्य अनुवाद का कार्य अपेक्षानुरूप दिखाई नहीं देता। आपने इस कमी को पूरा करने का कोई प्रयास किया?

रश्मि रमानी : सिन्धी भाषा के महान साहित्यकार कृष्ण खटवानी जी की मेरे द्वारा अनूदित सोलह

कहानियाँ नई दुनिया में प्रकाशित हुईं, जो बहुत प्रशंसित हुईं। इसके बाद सौ से अधिक सिन्धी लेखकों का अनुवाद मैंने किया। वर्ष 2002-2007 तक मुझे केन्द्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली के सिन्धी सलाहकार मंडल की सदस्य मनोनीत किया गया। वर्ष 2004 में भारतीय लेखकों का शिष्ट मंडल पंद्रह दिनों के लिए पाकिस्तान गया जिसमें मैं भी शामिल थी। इस यात्रा को मैं अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण मोड़ मानती हूँ। इस यात्रा का मेरे लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा। सिंध यात्रा के दौरान कराची से कींझर तक के सफर में मोअन जोदड़ो के साथ ऐसी जगहें देखीं जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। सिंधु घाटी सभ्यता विश्व की सबसे प्राचीन और नागर सभ्यता मानी जाती है, वेदों की रचना और वर्ण माला का विकास सैंधव प्रदेश में हुआ। वहाँ से लौटने पर मैंने सिंध की लोककथाओं का अनुवाद हिन्दी में किया जिसे नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है। संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार द्वारा मुझे 'सिंध : इतिहास संस्कृति और साहित्य' विषय पर सीनियर फैलोशिप दी गई थी, जोकि एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण काम था जिसे करने में मुझे आसानी हुई। इसके बाद लेखन में मेरी व्यस्तता बढ़ती चली गई और पढ़ाना छूट गया, हालाँकि आकाशवाणी से जुड़ाव बना रहा। कृष्ण खटवानी जी की जिन कहानियों का मैंने अनुवाद किया था, उन्हें संग्रह के रूप में 'अपने-पराये' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किया। बाद में इन कहानियों का नाट्य रूपांतरण भी हुआ।

डॉ. विकास दवे : अरे वाह! अब तो गृहस्थी के साथ लेखन की गाड़ी पटरी पर आ गयी थी। यानी संघर्ष युग की समाप्ति?

रश्मि रमानी : यह सच है कि कुछ वर्ष तो अत्यंत सुखद ही रहे वर्ष 2010 में नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली से मेरा सिंधी लोक कथाओं का संग्रह 'सिंधी लोक कथाएँ' नाम से सिंधी एवं हिंदी दोनों ही भाषाओं में प्रकाशित हुआ। अब तक बच्चे बड़े चुके थे और अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त थे, पति अपनी नौकरी और वैज्ञानिक अनुसंधान में व्यस्त थे और मेरे काम के साथ मेरा भी महत्त्व समझने लगे थे। वे कभी-कभार ही मेरे कार्यक्रमों में शामिल हो पाते थे लेकिन किताबें छपवाने में खुले दिल से मदद करते थे। पर इन सुकून भरे लम्हों की उम्र भी बहुत छोटी थी। वर्ष 2011 में मात्र बावन वर्ष की आयु में जीवनसाथी का कार्डियक अटैक से निधन हो गया। उसके बाद से मैंने स्वयं को लेखन के प्रति पूरी तरह समर्पित कर दिया। मेरे लिए लेखनी ने हमेशा मुश्किल वक्त में दर्द निवारक का काम किया है।

डॉ. विकास दवे : जिन बेटियों के जन्म पर ही प्रश्न चिन्ह था उन्होंने अपने कार्यों से उस युग की मानसिकता को कैसा प्रतिउत्तर दिया?

रश्मि रमानी : मेरी दोनों ही बेटियाँ बड़ी होनहार निकलीं। बड़ी बेटी एच.आर. में एम.बी.ए. करने के बाद पुणे में एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत है एवं दूसरी बेटी ने सूचना-प्रौद्योगिकी में एम-टेक किया और गृहिणी है, उसके पति इंडियन नेवी में कार्यरत हैं।

डॉ. विकास दवे : यही बातें समाज को दिशा देती हैं। ये तो पारिवारिक उपलब्धि रही पर इन होनहार बेटियों को संस्कारित करने वाली माता यानी आपकी उपलब्धियों की सूची भी तो पता लगे। आखिर उस युग में एक गृहिणी कैसे इतनी बड़ी राष्ट्रीय स्तर की लेखिका और अनुवादक के रूप में स्थापित हुई? सम्मान, पुरस्कारों की झड़ी-सी लगी वह भी हमारे पाठकों को बताइए।

रश्मि रमानी : हाँ विकास जी मेरी उपलब्धियाँ कई बार मुझे ही आश्चर्य में डालती हैं पर सब प्रभु की असीम अनुकम्पा है।

–मेरे हिन्दी कविता संग्रह–साज चुप है, बीते हुए दिन, स्मृति एक प्रेम की, सदियों पहले मुअनजोदड़ो में, सत्तावन कविता स्वप्न।

–साहित्य अकादमी की भारतीय साहित्य के निर्माता शृंखला के अंतर्गत श्री कृष्ण खटवाणी पर मोनोग्राफ।

–सिंध की लोककथाओं का अनुवाद नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया से प्रकाशित।

–अपने पराये (लेखक कृष्ण खटवाणी) अनूदित कहानी संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से प्रकाशित.

– अमर प्रेम, सात दिन उपन्यासों का सिंधी से हिंदी में अनुवाद।

–समकालीन सिंधी कहानियाँ, 'स्वतंत्रता के पश्चात् सिंधी की नई कविता' का अनुवाद, पिञिरो, कडहिं कडहिं, मां हिक सिंधिण, जलावतन वारिस, कुझु कवीताऊँ के ख़्वाब, सोनी बिलिड़ी (बाल कविताएं) सिंधी कविता संग्रह. सिंधी लोक कथाऊँ, कांऊँ ऐं झिरकी सिंधी लोक कथा संचयन. सिंधी बाल गीत (अनुवाद), कौआ और चिड़िया (सिंध की लोककथाओं का हिंदी अनुवाद)।

–स्वयं की कविताओं के अनुवाद गुजराती, मराठी, पंजाबी, कन्नड़, उड़िया, बांग्ला एवं अंग्रेजी में प्रकाशित।

–'सिंध : इतिहास संस्कृति एवं साहित्य' विषय पर संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार की सीनियर फैलोशिप प्राप्त करना बड़े उत्साहवर्धक रहे। वर्णमाला संस्था उड़ीसा का राष्ट्रीय उदय भारती युवा कविता पुरस्कार–1995, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय पुरस्कार, नई दिल्ली 1997–98, म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल द्वारा हरिहर निवास द्विवेदी पुरस्कार–1999, सिंधी साहित्य अकादमी भोपाल मध्यप्रदेश का श्रेष्ठ कृति पुरस्कार 2006, राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद् नई दिल्ली का श्रेष्ठ साहित्य पुरस्कार 1999–2000, अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति पुरस्कार 2007, सिंधी साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश द्वारा आजीवन साहित्य साधना के लिये गौरव पुरस्कार 2013, एन.सी.पी.एस.एल. नई दिल्ली का मेरिट लिटरेरी अवार्ड 2013, म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल द्वारा भारतीय भाषाओं में अनुवाद श्रेणी में सप्तपर्णी सम्मान 2020।

डॉ. विकास दवे : चलिए, आपको धन्यवाद कि आपकी जीवन यात्रा आज की बहनों को साहित्य की दिशा देने में सक्षम होगी। सिंधी साहित्य में नारी स्वर, बाल साहित्य एवं विभाजन त्रासद साहित्य के प्रमुख स्वरों में आपका साहित्य/काव्य संवेदनशील स्वर के रूप में रेखांकित हुआ है।

साहित्यिक उपलब्धियों के लिये साधुवाद और बधाई देते हुए यह चर्चा यहीं समाप्त करता हूँ।

रश्मि रमानी : धन्यवाद।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)
मो. 9827261567

डॉ. विजयानन्द

भारतीय साहित्य में भारतीय नदियाँ

मानव सभ्यता का उद्भव सिंधु नदी घाटी के परिक्षेत्र में हुआ था। नदियाँ स्वच्छ जलधाराओं का स्वरूप थीं। उनमें अविरल, निर्मल जल बहता रहता था, इसलिए मनुष्य नदियों के किनारे बसा। नदियों के किनारे उसने अपने घर बनाए। अपना रहन-सहन आरंभ किया। उनका पूजन, अर्चन शुरू किया। वहीं से उसकी सभ्यता और संस्कृति की शुरुआत भी हुई। वैदिक ऋषि, पर्वत चोटियों से जलधाराओं के संदर्भ को इस तरह व्याख्यायित करते हैं-

हिमवत: प्रसवन्ति सिन्धौ समह संगम:।

आपो ह महां तद् देवीर्ददन् हृदधोत भेषजम्।। (-अथर्ववेद -6/24/1)

अर्थात् -बर्फ से आच्छादित पर्वत चोटियों से जो जलधाराएँ बहती हुई समुद्र की ओर जाती हैं, वे औषधीय गुणों से युक्त होकर रोगों को नष्ट करने वाली, अमृतमय होकर, हृदय को शांति प्रदान करने में सहयोग करती हैं।

वैदिक ग्रंथों में जल के उपयोग का विधान बहुत ही सुखमय बताया गया है। इसके सेवन से जीवन स्वस्थ, शरीर आरोग्यवर्धक हो जाता है। ऋषि कवि लिखते हैं-

जलाषणभिषिंचत जलाषेणोपसिंचत।

जलाषुमुग्रं भेषजं तेननोमृद जीवसे।। - (ऋग्वेद 6/57/2)

अर्थात्-सभी जलधाराएँ प्राणियों का कल्याण करती हैं, लेकिन उनमें गंगा नदी की तरह हिमालय क्षेत्र से निकलने वाली जलधाराएँ अन्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। विशेषकर चिकित्सा की दृष्टि से उनका बहुत ही उपयोग रहता है।

पवित्र स्वास्थ्यवर्धक नदियों के किनारे लोगों के समूह में एक साथ रहने के कारण समाज बना और समाज से संस्कृति बनी। संस्कृति से ही उत्सवों, परंपराओं का निर्माण हुआ। जब गिरिशृंगों से उद्भूत अपने पाटों पर काँस, बाँस, आम, जामुन, कदम्ब आदि के झुरमुटों से लहराती हवा की तरह एक निश्चित पैमाने में बलखाती नदियाँ बहती दिखाई पड़ती हैं, तो हमारा मन उनके पुराने युगों की स्मृतियों में खोने लगता है और याद आते हैं, बेतवा नदी के तट पर निवास करने वाले प्रख्यात कवि केशवदास और गंगा का पवित्र जल पीने वाले गोस्वामी तुलसीदास। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, तमसा, कावेरी

आदि नदियों के किनारे बसे समाजों और आश्रमों ने अनेक ऋषियों-मुनियों, कवियों को जन्म दिया। वेदों की ऋचाओं के अधिकतर कवि, इन नदियों के परिक्षेत्र में ही रहते थे। वहीं पर आश्रम बनाकर, गुरुकुल की स्थापना कर, पठन-पाठन के साथ यज्ञ आदि किया करते थे।

आर्यभट्ट और वाराहमिहिर जैसे खगोलशास्त्री वैज्ञानिक, जिन्हें विंध्याचल पर्वत की परिधि से निकलने वाली सरिताओं ने प्रेरणा दी। अमृत की बूँदों में भीगी औषधियों से टक्कर खाकर उन्हें आत्मसात करते हुए इन नदियों का जल प्रवाह, विलक्षण विद्युत शक्ति पैदा करता रहा। कहा जाता है, समुद्र मंथन के समय देवताओं और दैत्यों में काफी तनाव उत्पन्न हो गया था। देवताओं ने दैत्यों से दोस्ती करके समुद्र का मंथन किया। मंथन के उपरांत जो 14 रत्न प्राप्त हुए थे, उनमें दो अद्भुत रत्न थे, एक अमृत और दूसरा हलाहल। अमृत में विलक्षण जीवनदायिनी शक्ति थी, तो दूसरे हलाहल यानी विष में जीवन नष्ट करने वाली आकुलता। दोनों एक दूसरे के विपरीत। अगर भगवान शिव मध्यस्थता नहीं करते, तो महाअनर्थ हो जाता। उन्होंने विष की ज्वालाओं से भरा हलाहल पी लिया और नीलकंठ हो गए। हलाहल पीते समय विष की कुछ बूँदें धरती पर आ गिरीं, जिसने पृथ्वी पर अनेक वनस्पतियों को विषयुक्त कर दिया। जो आज भी किसी न किसी नाम व रूप में विद्यमान हैं। ठीक उसी तरह देवताओं द्वारा अमृतपान के समय भी हुआ। विष की तरह अमृत की कुछ बूँदें भी छलक कर कलश से बाहर आ गईं और उसी की तरह वे भी वनस्पतियों पर पड़ीं, जो औषधियों के रूप में अब भी जनमानस को लाभ पहुँचा रही हैं। उन औषधियों का ये नदियाँ, आज भी पोषण करती हैं।

सरिताएँ (नदियाँ) अपनी चंचल लहरों से इनको पीटती-पाटती, अपने जल में निमग्न करती हुई बहाती चलती हैं। शकारि विक्रमादित्य, शालिवाहन, भार शिवनांग, वाकावट, प्रवरसेन आदि को इन नदियों का ही पुत्र कहा जाता है। आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास, वाणभट्ट, भवभूति आदि की काव्य सरिता, इन्हीं की प्रेरणाओं से उद्भूत हुई थी। यही कारण है कि उनके काव्य में तमसा, शिप्रा, शोण आदि नदियों की प्राकृतिक छटाएँ अब भी अपना इतिहास कहती हैं। महाकवि हर्ष ने अपने काव्य की प्रशस्ति में स्वयं लिखा है-

दिशि-दिशि गिरीग्रावणः स्वां वमन्तु सरस्वती,
तुलयुत भिथस्तामापातः स्फु रद्ध्वनिडम्बराम्।
स परमपरः क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते,
मथितुरमृतं खेदच्छेदिप्रमोदनमोदनम्।।-(नैषधीयचरितम्)

अर्थात्-सभी दिशाओं में पर्वत की चट्टानें, निर्झर की धारा उगल रही हैं और कल-कल ध्वनि करती चंचल लहरों वाली नदियाँ स्वभावतः आपस में अपनी गति तथा ध्वनि की तुलना करती हैं। वैसे ही प्रत्येक दिशा में कविता लिखने वाले कवि, अपने आलाप की तुलना, अपने आप में ही करेंगे। मेरा महाकाव्य नैषधीयचरितम् क्षीर समुद्र है। उसके मंथन की सामर्थ्य रखने वालों को, थकावट दूर करने की उसमें नदियों की तरह अमृत शक्ति भी मिलेगी।

वैसे तो अथर्ववेद में ऋषि लिखते हैं-

उपह्रे च गिरीणाम्, संगमें च नदीनाम्, धिया विप्रो अजायत्।

अर्थात्–पर्वतों की कंदराओं में या नदियों के संगम क्षेत्र में ही विप्रत्व उत्पन्न होता है और वहीं से संस्कृति, सभ्यता शुरू होती है।

अनेक रूपों और आकारों में वृक्षों और लताओं से मंडित सहस्त्र शिखरों से आच्छादित विंध्य पर्वत तथा उससे निकलने वाली तीव्र जलराशि लेकर बहती नदियाँ, पर्वतों, चट्टानों पर तेज प्रहार करती, बलखाती, लहराती, इठलाती हुई आगे बढ़ती हैं। इनकी अमृत जलधार, इस पावन भारत भूमि को अत्यंत मोहक एवं रमणीय बना देती है।

रघुकुल तिलक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का अधिकाधिक जीवन नदियों के किनारे बीता। महर्षि परशुराम ने भी अपने जीवन की एक लंबी अवधि नदियों के किनारे बिताया। योगीराज भगवान कृष्ण का गुरुकुल चंबल नदी के तट पर ही था। पौराणिक काल के अधिकाधिक ऋषि–महर्षि अपनी शक्ति साधना इन नदियों के तट पर ही किया करते थे। जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी बालूका नदी के तट पर ही ध्यान मग्न हुए थे। महात्मा बुद्ध को भी नदियों से काफी लगाव था। भक्ति काल का भारतीय इतिहास ऐसे तमाम उदाहरणों से भरा पड़ा है। भक्ति काल के संत, सूफी आदि सभी नदियों के दीवाने थे। नदी के तट पर जीवनयापन तत्कालीन विसंगतियों के मध्य उनकी महत्त्वपूर्ण मजबूरी भी थी। जब निरंकुश मुग़ल बादशाह या राजा, राज सुख, विषय, वासना में लिप्त होकर समाज से एकदम कटे हुए थे। मात्र मंत्रियों के परामर्श से शासन चलता था, क्योंकि उनके पास प्रजा से मिलने का समय नहीं था, फिर भी अपवाद स्वरूप बहुत से राजा–महाराजा ऐसे हुए, जिन्होंने जनता के सुख में अपना सुख देखा और जनता के दुख में अपना दुख, परंतु ऐसे राजाओं को भीषण समस्याओं का मुकाबला भी करना पड़ा। इधर उनकी प्रजा उनके डर से नगरों से दूर, नदियों के किनारे एकांत में बसने लगी थी।

पूर्व पाषाण काल में मनुष्य ने अपने को नदियों के किनारे ही सुरक्षित समझा था। अग्नि का आविष्कार भी वहीं हुआ था। यह उनके मस्तिष्क का चिंतन नहीं था, वरन उनकी आवश्यकता थी। यह तो पूर्णतः सत्य है कि अगर आवश्यकता न होती तो संभवत आविष्कार भी नहीं होता। इसके लिए तत्कालीन मानव प्रजातियों ने वनों की अपेक्षा, नदियों के तट पर ही बसने का निर्णय लिया था। उनकी तमाम सामुदायिक बस्तियाँ, नदियों के तटों पर बसती रही। इससे उन्हें कई तरह के लाभ भी हुए। प्रथम तो यह कि उन्हें पानी के लिए दूर नहीं जाना पड़ता। दूसरे जब शाकाहारी जंगली जानवर, नदियों में पानी पीने आते तो उनकी आहट पाकर वे उन्हें अपना शिकार बना लेते और थोड़े से प्रयास में दिन भर के पूरे परिवार को खाने हेतु माँस मिल जाता।

मध्य पाषाण काल से नवपाषाण काल तक आते–आते, नदियों के तट पर उगी वनस्पतियों के माध्यम से ही उन्हें कृषि करने की जिज्ञासा हुई। पुरातत्व उत्खनन से प्राप्त गेहूँ, जौ के दाने इस बात को प्रमाणित करते हैं। खंडहरों के उत्खननकर्ताओं ने उनके बुद्धि विलास में भी नदियों के महत्त्व को स्वीकारा है। अतः नदियाँ आरम्भ से ही मनुष्य की प्रेरणास्रोत रहीं हैं। जब मेघदूतम में महाकवि कालिदास ने संदेश लेकर जा रहे मेघों को यह सलाह दी थी कि वे विंध्य पर्वत के ऊपर से जाते समय, काले फलों से लदे हुए जामुन के गुणों से टकराकर बहने वाली नदियों के अमृत जल का पान अवश्य करें, क्योंकि उनके जल में संजीवनी सकती है। संभवतः उस समय हिमालय नहीं था, इसीलिए कालिदास को विंध्य

पर्वत का संकेत करना पड़ा।

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि पंडित श्यामनारायण पांडेय ने अपने महाकाव्य हल्दीघाटी में बनास नदी का विधिवत वर्णन किया है। भारतीय स्वाभिमान तथा स्वातंत्र्य के प्रतीक महाराणा प्रताप के राज्य की सुरक्षा के लिए बनास नदी वरदान सिद्ध हुई थी। सम्राट अकबर के समर्थक, उनके प्रतिद्वंदी मानसिंह की सेना बनास नदी के उस पार खड़ी थी। बनास नदी को पार कर मेवाड़ पर आक्रमण करने का साहस उनमें नहीं था। कवि लिखते हैं–

आगे थी अगम बनास नदी,
बरसा सी जिसकी प्रखर धार।

सुपरिचित कवि गोपाल सिंह नेपाली ने भी बड़े गर्व के साथ इन सरिताओं के जल की पवित्रता का गान किया है। अपने गीतों में उन्होंने नदियों के साथ प्रकृति सौंदर्य की भी अच्छी तस्वीर खींची है। एक उदाहरण–

यह लघु सरिता का जल,
कितना निर्मल, कितना शीतल?

सबको जीवित रखने के लिए ही नदियों को जीवन मिला है, मनुष्य ही नहीं वरन प्रकृति के प्रति भी उनमें अपार प्रेम है। पत्थरों की चट्टानों के मध्य से ठोकरें खाती हुई जल–राशि लाख कष्ट सहकर भी सबके लिए अमृतधारा बनकर ही बहती है। इन नदियों का वास्तव में सृष्टि से कितना लगाव है? ये अपने को जैसे धरती के कण–कण में पिरोती चलती हैं। कितना समर्पण है इनमें? देश के प्रति अपनी, संस्कृति और सभ्यता के प्रति। स्नेह, परोपकार में ही इनका जीवन व्यतीत होता है। ये किसी से रागद्वेष–ईर्ष्या नहीं रखतीं। इनकी उत्ताल तरंगे बार–बार हिलोरें लेती, समूची सृष्टि को ही नहीं, वरन अपने युग को भी टेरती हैं। यह कहते हुए कि कोई न बड़ा है, न छोटा। किसी में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। सभी समान हैं, मेरी तरह सबको प्रेम रूपी जलराशि से वे तीव्र गति से बहती हुई अपनी ही जलराशि में विलीन होती जाती हैं।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने गंगा के जल को सर्वश्रेष्ठ माना है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि गंगाजल का पान करने एवं स्नान करने से ही लाभ नहीं होता, बल्कि उसके स्मरण करने, देखने और पढ़ने से भी अभीष्ट फल, मोक्ष की प्राप्ति होती है। यथा–

गंगाष्टकं पठति य:प्रयत: प्रभाते,
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्य:।
प्रक्षाल्य गात्रक निकल्मष्पङ्क माशु,
मोक्षं लभेत्पतति नैव नरो भवाब्धौ।। –महर्षि वाल्मीकि– गंगाष्टकं श्लोक –9

'मानस का हंस' के प्रख्यात कथाकार अमृतलाल नागर ने नदियों की इसी वृत्ति को रेखांकित किया है। मोहिनी और तुलसी के गायन के बाद, ध्यान मग्न होकर मेघा भगत झूम–झूम कर गा उठता है। कल–कल निनाद करती नदियों का प्राकृतिक स्वरूप और उनके किनारे स्वाभिमान से तन कर खड़े पेड़, पौधे और झाड़ियाँ, नदियों के प्राकृतिक सौंदर्य की और अभिवृद्धि करती हैं।

नदियाँ सभ्यता और संस्कृति का पोषक रही हैं। उन्होंने जीवन को अनेक दुरुहताओं से मुक्त किया है। नदियों की पूजा, वृक्षों की पूजा, हमारी भारतीय परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। नदियों ने लोगों को जीवन दिया है, नदियों से सिंचाई के संसाधन बनाए गए, जिससे कृषि एवं सब्जियों का उत्पादन बढ़ा। नदियों के किनारे उगने वाले पेड़ों को अलग से जल देने की आवश्यकता नहीं होती। पीपल, बरगद, कदम्ब आदि अनेक वृक्ष हमें शुद्ध हवा देते हैं। जिससे हमारी साँसें निर्मल होकर सुचारु रूप से चलती रहती हैं। बगैर साँसों के जीवन संभव ही नहीं होता। नदियों की मछलियों से भी बहुतों का जीवनयापन होता है। एक विशेष तरह की नदियों के किनारे रहने वाले मल्लाह, आज भी नदियों पर ही निर्भर हैं। उनके द्वारा बहुतों के दुरूहपथ, सन्निकट होते हैं। रामकथा में निषादराज ने राम-सीता, लक्ष्मण को गंगा पार कराया था। यह कथा सभी को ज्ञात है। महाभारत कथा में महर्षि पाराशर, सत्यवती, गंगापुत्र भीष्म आदि की कहानियाँ पवित्र गंगा के तट से ही उत्पन्न हुई थी। निषादों की जीविका का साधन भी नदियाँ हैं। नदियाँ भारतीय परंपरा और संस्कृति का परिचायक हैं। यह हमारी वास्तव में पोषक हैं। मैंने अपने छत्रपति शिवाजी पर आधारित खंडकाव्य 'शिवा शौर्य', काव्य संग्रह 'संबोधन तथा अन्य कविताएँ, मन लहरें' एवं 'समर भूमि' महाकाव्य में ऐतिहासिक दृष्टि से नदियों के समीप की संस्कृति का विशेष वर्णन किया है। श्रीकृष्णचरित महाकाव्य में तो मैंने यमुना तट पर योगीराज श्रीकृष्ण की रासलीला को विधिवत प्रस्तुत किया है।

भारतीय नदियाँ स्वयं अपने आप में संस्कृति एवं सभ्यता को समेटे हुए होती हैं। सर्वाधिक कृषि कार्य नदियों के ही सहयोग से आज भी संभव होता है, नदियाँ भारतीय किसानों की आत्मा हैं, वे उनका सपरिवार पालन करती हैं। उनके द्वारा उत्पादित अन्न से पूरा समाज, देश पलता है। इसीलिए हम उनकी पूजा भी करते हैं। आज के परिवर्तित मौसम को देखते हुए मैंने भी लिखा था-

जिंदगी की सहज कोई भाषा नहीं,
मौत के सन्निकट कोई आशा नहीं।
जिस तरह आँधियों में लहरता पवन,
उस तरह झूमने की दिलासा नहीं।
लेकर बारिश का जल गाँव को दे डूबो,
ऐसी नदियों में कोई विपाशा नहीं।।

सम्पर्क : प्रयागराज (उ.प्र.)
मो. 9335138382

मनोज जैन

संकल्प रथ के अपराजेय महारथी : राम अधीर

एक समय था जब खुरदरे गद्य को कविता मानने और लिखने वाले समवेत स्वरों में छान्दसिक कविता की सबसे श्रेष्ठ अभिव्यक्ति गीत को नई कविता के कवि सिरे से नकार रहे थे और कविता के नाम पर खालिस खुरदुरा गद्य परोस रहे थे।

ये लोग आयातित विचारधारा के नाम पर सनातन मूल्यों, परम्पराओं के विरुद्ध लगातार गद्य में कविता के नाम लिखे जा रहे थे, और गीत को लिजलिजी भावुकता की पुरातन अभिव्यक्ति मानकर उसे लगातार दरकिनार करते हुए योजनाबद्ध तरीके से अभियान चलाकर गीत के मरने की घोषणा चीख-चीखकर कर रहे थे।

ऐसे घटाटोप में गीत के प्रति निष्ठ, दत्तचित्त और संकल्पित मन के गीतधर्मा ने उस समय की तमाम असंगत परिस्थितयों की परवाह न करते हुए गीत पर हो रहे हमलों और गीत पर उमड़े सुनियोजित संकट को टालने और गीत को उसका विशेष स्थान दिलाने की दिशा में एकला चलो की तर्ज पर संकल्प के रथ में, गीत को केन्द्र में बैठाकर मंथर गति से अपनी मंजिल तक पहुँचने की यात्रा को अन्तिम साँस तक दुरभिसंधियों से घिरे गीत को बचाने जमकर जूझता रहा।

अन्ततोगत्वा उस गीत रथी की मेहनत रंग ले ही आई, आज हम अपने आस-पास गीत के पक्ष में, जो सकारात्मक माहौल देखते हैं, उसका श्रेय गीत के इस महारथी को ही जाता है, जिसके एक निष्ठ संकल्प और तप ने गीत की पूरी परम्परा को तब से लेकर गीतों के समकाल तक सम्मान दिलाया।

जी हाँ, मैं बात कर रहा हूँ 'संकल्प रथ' पत्रिका के साहित्य सम्पादक कीर्ति शेष राम अधीर जी की, जिन्होंने संकल्प रथ के अपने सम्पादकत्व में लगभग चार दर्जन गीत/गीतकारों पर विशेषांक जिनमें से प्रमुख :-

1-मुकुटबिहारी 'सरोज' विशेषांक अगस्त-सितंबर-अक्टूबर संयुक्तांक 2002

2-नारायण लाल परमार विशेषांक जुलाई 2003

3-डॉ. कैलाश गौतम विशेषांक मई 2007

4-डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी विशेषांक जून 2008

5-महेश अनघ विशेषांक अप्रैल 2013

6–वीरेन्द्र आस्तिक विशेषांक 2013

7–अवध विहारी श्रीवास्तव विशेषांक अक्टूबर 2014

8–डॉ. ओमप्रकाश सिंह विशेषांक जून–जुलाई 2017

9–डॉ. सुरेश गौतम (समीक्षक) विशेषांक अगस्त 2018

10 मयंक श्रीवास्तव विशेषांक

इत्यादि देश के सुपरिचित गीतकारों पर केंद्रित कर देश भर में गीत, नवगीत का जबरदस्त माहौल बनाया।

12, अप्रैल 1935 को रामनवमी के दिन महाराष्ट्र के वर्धा जिलान्तर्गत एक छोटे से कस्बे –आर्वी में जन्मे राम अधीर जी की लौकिक शिक्षा भले ही न के बराबर हो किन्तु वे दुनियादारी की समझ के मामले में खासे पण्डित थे। उनके स्वभाव में कबीराना अक्खड़ता और फक्कड़पन दोनों संयुक्तरूप से शामिल थे। वे लाभ–हानि का गणित लगाए बिना खरी–खरी कहने के आदी थे जिसका खामियाजा उन्हें जीवन भर भोगना पड़ा लेकिन इसकी उन्होंने कभी कोई परवाह नहीं की।

अनुभवों की पाठशाला ने उन्हें लगातार इतने कड़वे और कसैले पाठ पढ़ाए कि वह जीवन भर दुख दर्द को गाने और बयान करने वाले गीतकार के रूप में जाने जाते रहे। स्व. रामावतार त्यागी की परम्परा के वे मध्य प्रदेश के एक मात्र गीतकार रहे हैं जिन्होंने त्यागी शैली को हू–ब–हू अपना कर उनकी गीत परम्परा को आगे बढ़ाया।

गीत की अस्मिता के लिए निरन्तर संघर्षरत कवि राम अधीर जी का एक समय था जब देश की ऐसी कोई पत्रिका नहीं थी जिसमें राम अधीर जी की उपस्थिति न हो इनके गीत धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान कादम्बिनी, दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, राजस्थान पत्रिका, नई दुनिया इंदौर, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण मधुमती, देशबंधु, मनोरमा सन्मार्ग आदि में निरन्तर प्रकाशित होते रहते थे।

अनेक राज्यों की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित साहित्यिक पत्रकारिता को कार्यक्षेत्र बनाने वाले यशस्वी सम्पादक राम अधीर जी के खाते में छोटी–बड़ी उपलब्धियाँ दर्ज हैं, जिनका उन्होंने कभी जिक्र नहीं किया राम अधीर जी ने पूरे जीवन काल में कला–संस्कृति और साहित्य पर शताधिक लेख तो लिखे और करीब चार सौ पुस्तकों की समीक्षाएँ भी की हैं।

राम अधीर जी ने बहुत ज्यादा भले ही न लिखा हो लेकिन जितना लिखा वह भी कम नहीं है क्योंकि उनका मानना था कि जो रचना के मामले में बहुत तेज चलेगा वह हाँफ जाएगा। रचना धैर्य और आत्म विश्वास चाहती है। यही कारण है कि उन्होंने जो भी लिखा उसका अपना धरातल बहुत ठोस है और सब का सब बेजोड़ है।

उनके आचरण में और गीतों में प्रतिरोध का स्वर सदैव मुखर रहा। उन्हें गलत बात फिर चाहे वह दर से लेकर दरबार तक कहीं भी क्यों न हो बर्दाश्त नहीं होती थी। उनसे जुड़े अनेक वरिष्ठ मित्रों को आज भी ऐसे अनेक घटना क्रम याद होंगे जिन्हें संकल्प रथ के सम्पादक की तरफ से संकल्प रथ की सदस्यता के निरस्तीकरण की सूचना के साथ बची हुई सदस्यता शुल्क का मनीऑर्डर एक साथ मिलता था।

इस अजीब–सी सनक के पीछे भला कौन सी वजह रही होगी मुझे समझने में देर तो लगी पर जो

निष्कर्ष मेरे सामने आया वह रोचक है। तह में जाकर पड़ताल करने पर मेरे सामने दो-एक बातें खुल कर आती हैं दर असल राम अधीर जी बेहद स्वाभिमानी किस्म के इंसान थे और वह लोगों को वैसे ही पहचान लेते थे जैसे हीरे को जौहरी। वे एक किस्म के मानवीय प्रवृत्तियों के स्कैनर थे उनके मनो मस्तिष्क में आदमी के गुण-दोष के सजीव चित्र उभर आते थे। ऐसा नहीं है कि वह सभी की सदस्यता वापस कर देते थे।

उन्हें इन्सान की परख थी। वे ऐसे लोगों की सदस्यता लौटाते थे जो समर्थ होते हुए साहित्य के प्रचार प्रसार में थोड़ा सा भी धन मन से खर्च करने के पक्ष में नहीं होते थे। और दूसरे किस्म के लोग वह होते थे जिनके पास धन होता था पर लेखन में आग नहीं होती थी और धन के बलबूते संकल्प रथ में बैठना चाहते थे।

पत्र और मनीऑर्डर राम अधीर जी के दो महत्त्वपूर्ण टूल थे जिन्हें वह जरूरत के अनुसार उपयोग कर लेते थे। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो अपने आलोचकों की प्रशंसा खुले मन से कर पाते हैं लेकिन यह गुण राम अधीर जी के यहाँ पर्याप्त मात्रा में था। वह अपने आलोचकों की खुलकर प्रशंसा करते थे और गीतों के लेखन का श्रेय भी इन्हीं को देते थे। संकल्प रथ पत्रिका में पत्र सहित साभार अपनी आलोचना प्रकाशित करना संपादक के लिए आनन्द के पलों में डूबने जैसा था।

संकल्प रथ की सम्पादकीय में कुछ बातें ऐसी होती थी जिन्हें पाठक चटखारे लेकर पढ़ता था राम अधीर जी सम्पादकीय में अक्खड़ भाषा का तड़का लगाकर पूरे पेज को रोचक बना देते थे।

उनके व्यंग्य के तीर सटीक निशाने पर जाकर लगते थे। उनके आगे बड़े से बड़ा तीरंदाज भी फेल था। कुछ शब्द उन्हें बड़े प्रिय थे जैसे गोष्ठी छाप कवि, अमूमन, साला, प्रथम श्रेणी का मूर्ख, शत्रु इत्यादि जिनका प्रयोग अमूमन उनके हर सम्पादकीय कालम में होता ही होता था। बावजूद इसके संकल्प रथ पत्रिका आरम्भ से लेकर अंत तक लोकप्रियता के शिखर पर रही।

कुछ लोगों के लिए संकल्प रथ में छपना आजीवन स्वप्न ही रहा और जिनपर विशेषांक छपा व जिनके गीत- नवगीत प्रकाशित हुए उन्होंने अपने सौभाग्य की सराहना की। एक व्यक्ति की चिंतन दृष्टि ने, दृढ़ विश्वास ने, सुस्पष्ट समझ ने, संकल्प ने, संकल्प रथ को पंख लगा दिए थे! आज भी संकल्प रथ के स्तर को कोई दूसरी गीत धर्मी पत्रिका को छूना तो दूर को उसके आस-पास भी खड़ी नहीं हो सकी।

गीत का परचम थामे 108/1, शिवाजी नगर, भोपाल से चला यह संकल्प का रथ देश भर में 30 सालों तक अनवरत गीत-नवगीत का परचम फहराता रहा।

राम अधीर जी का समग्र आकलन संकल्प रथ की चर्चा किए बिना पूरा नहीं हो सकता उनके कृतित्व के दो धड़े हैं, पहला गीतकार दूसरा साहित्य सम्पादक उनके गीतकार मन ने ही उन्हें साहित्य सम्पादक बनने के लिए विवश किया। राम अधीर जी ने गीति साहित्य को कुल जमा चार नायाब संग्रह, जिन्हें हम काल खण्ड की दृष्टि से विभाजित करके देखें तो दो संग्रह 'सूरज को उत्तर दो' और 'बूँद की धाती' की रचना उन्होंने तब की जब छत्तीसगढ़ उनकी कर्म भूमि रही।

बाद के दो 'संग्रह धूप सिरहाने खड़ी है' और 'वह नदी बीमार है' पहले दो संग्रहों से ठीक बारह वर्ष बाद आ सके। इस दौरान मिले जीवन के कटु अनुभवों, घोर गरीबी, दुख, रोग, ऋण, संताप, विरोध,

शत्रुता, षड्यंत्र और विपदाओं ने कवि को बुरी तरह तोड़कर रख दिया जिसकी परिणति यह हुई कि प्रगीत दर प्रगीत कवि का कथ्य और पैना होता चला गया।

राम अधीर जी छांदिक-प्रतिबद्धता के भले ही पक्षधर रहे हों पर उनका जोर और झुकाव हमेशा धारदार कथ्य की तरफ रहा है। यही कारण है कि उनका एक भी गीत भरती वाले कॉलम में नहीं रखा जा सकता। उन्होंने गीत को दुरूह होने से बचाने के लिए अत्यधिक छन्द प्रयोग के टोटकों से अपने आपको बचाए रखा।

गीत के सन्दर्भ में उनकी साफगोई को मैं उन्हीं की जुबानी पाठकों के लिए यहाँ परोसने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ वे कहते हैं कि 'मेरे लिए गीतों का मुकाम वही है जो पहले रहा है। गीत को नकारने का कोई पुख्ता प्रमाण मेरे ख्याल से किसी के पास नहीं है। इसलिए यह सनातन है और शाश्वत भी। गीत की अपनी संस्कृति है और वह आदिम युग से आबद्ध रहा है। गीत, एक सत्य है और वह सच ही बोलता है। वैसे हर रचना अपने मूल चरित्र में सच ही होती है, सवाल यही है कि उसका रचनाकार अपनी विधा के प्रति सचेत और प्रामाणिक है या नहीं। सायास लेखन गीत की नस्ल को बिगाड़ देता है। फिर भारतीय गीत के परिप्रेक्ष्य में हिंदी गीत को 'लायर' नामक वाद्य पर गाये जाने वाले उस गीत से नहीं जोड़ा जा सकता जो कभी यूरोप में श्रम के परिहार के लिए गाया जाता था और इसी ने गीत के लिए लिरिक शब्द दिया, परंतु हिंदी गीत लिरिक नहीं है। कविता चूँकि गीत-मय होती है और गीत भी कविता है, इसलिए वर्ड्सवर्थ के विचारों से सहमत होना पड़ेगा जिन्होंने कहा था कविता सशक्त भावनाओं का स्वच्छंद उच्छलन है। शांति में किए गए के आवेगों से यह जन्म लेती है जबकि शैली इससे ज्यादा स्पष्ट करते हैं-कविता सर्वोत्कृष्ट आनन्ददायी मस्तिष्क के सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक आनन्ददायी क्षणों का अभिलेख है।'

यूँ तो मेरा जुड़ाव उनसे बना ही रहा मैं यह नहीं कह रहा कि मैं उनका बहुत आत्मीय था हाँ पर वे मेरे बहुत आत्मीय थे। उनके निधन के कुछ माह पहले जब मैं उनसे मिलने गया तब उनकी याददाश्त लगभग जा चुकी थी पर उनकी उठने-बैठने बात करने की भंगिमाओं में इस बीमारी का कहीं कोई लक्षण उन पर परिलक्षित नहीं हुआ। धूप उन्हें बेहद पसन्द थी, वह एक कुर्सी मेरे लिए भी खींच लाए। मैंने बातचीत की। थोड़ी ही देर में ही मुझे यह आभास हो गया कि दादा का एंटीना ठीक से काम नहीं कर रहा, न सेंसर, न ही रिसीवर।

मैंने गीत और संकल्प रथ के अनेक अंकों के हवाले दिए उनकी याददाश्त थोड़ी देर के लिए लौटी बोले 'अंक प्रेस में है, कल डाकखाने जाऊँगा!' तभी आंटी जी ने आकर कहा' कौन सा अंक? कहाँ का डाकखाना? कुछ याद भी रहता है, कब से पत्रिका बन्द पड़ी है। भैया इनकी याददाश्त जा चुकी है, कुछ भी याद नहीं रहता। बस ऐसे ही सारा दिन बगीचे में बैठकर बाहर देख कर कट जाता। इतना कह कर आंटी जी चली गईं!

मैंने प्रसंग बदलते हुए दादा से पूछा, 'मनोज जैन कब से नहीं आया आपसे मिलने? दादा ने फौरन रिप्लाई किया-

अरे भाई, 'वह तो मुझसे शत्रु भाव रखता है।'

'मैंने कहा, नहीं बिल्कुल भी नहीं! 'वह तो आपका प्रशंसक है'।

चेहरे पर मुस्कान बिखेरते हुए वे बीच में ही बोल पड़े, 'हाँ मिलने तो आता है, कभी-कभी पर, फिलहाल कुछ दिनों से उसका चक्कर नहीं लगा।'

मेरा मन दादा के मुँह से निकले शत्रुभाव वाले शब्द की इंटेंसिटी पर ठिठक गया काश! अकारण उपजे इस भाव को मैं उनके मस्तिष्क के एप्लीकेशन से डिलीट कर पाता! खैर, उनका पूरा गीत और जीवन दर्शन उन्हीं के द्वारा दी गयी गीत की परिभाषा के केंद्र में घूमता था। मैंने उन्हें अपने जीवन काल में दो या तीन अवसरों पर सुना पाठ करते हुए और इतने ही ऐसे प्रसंग भी मेरी स्मृति मंजूषा में हैं। जब राम अधीर जी राम अधीर न रहकर ऋषि दुर्वासा रूप में दिखे तो पहले चर्चा उनके दुर्वासा रूप की करते हैं।

वणिक बुद्धि लाभ-हानि का विचार पहले करती है। यहाँ मामला एक दम उलट है। जैसा कि राम अधीर जी के बारे में यह तथ्य किंवदन्ती की तरह प्रसारित है कि वह सच कहने के लिए एक बार टूट तो सकते थे पर झुक नहीं सकते थे। समझौता करना उनके शब्दकोश में नहीं था। उनके गीतों के रचाव की पृष्ठ भूमि भी यही थी।

साहित्य अकादमी द्वारा संचालित पाठक मंच की एक गोष्ठी जिसकी अध्यक्षता लीलाधर मण्डलोई जी कर रहे थे, कार्यक्रम के समापन पर एक आयोजक ने आभार ज्ञापन के समय इतना कहा ही था कि हम आभारी हैं वरिष्ठ कवि लीलाधर मण्डलोई जी के सुनते ही राम अधीर जी का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया और उठकर बोले भाई यह बताओ लीलाधर मण्डलोई वरिष्ठ कैसे हो गए बाद...

ऋषि दुर्वासा के शाप से आगबबूला हो उठे मण्डलोई उस समय कैसे संयत रहे यह तो वही जानें!

एक और प्रसंग उस समय घटित हुआ जब निराला सृजन पीठ और नईम फाउण्डेशन के संयुक्त आयोजन के अंतिम दिन दूसरे या तीसरे सत्र में भोपाल के एक कवि जो स्वयं को बड़ा तुर्रम खाँ समझते थे कविता पाठ करने खड़े हुए उन्होंने जैसे ही गीत पाठ आरम्भ किया, ऋषि दुर्वासा उठ खड़े हुए और भरी सभा में कवि को पाठ करने से रोक दिया।

टोक में सिर्फ उन्होंने कहा भाई यह गीत तो रमेश रंजक का है इसे आप कैसे पढ़ सकते हैं। दुर्वासा के शाप से अभिशप्त वह कवि आज दिन तक कहीं किसी समारोह में दिखाई भी नहीं दिए।

ऐसे अनेक किस्से हैं जिनके चलते राम अधीर जी के दुश्मनों का ग्राफ दिन पर दिन बढ़ता गया। उनकी दिलचस्पी मित्र बनाने बजाय दुश्मनों की संख्या बढ़ाने में रही, जिसका जिक्र वह अपनी पुस्तक के आत्मकथ्य में खुल कर करते भी हैं। मैंने उन्हें पहली बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन के पुराने भवन में सुना था, जो अब नहीं है। उनके सस्वर पाठ का अंदाज अनूठा था जिसकी अमिट छाप मेरे मस्तिष्क पर अब भी जस की तस है।

बंधु अपनी नाव से

बंधुओं अपनी नाव से/उस पार मुझको छोड़ देना,
गाँव जाकर मैं किसी के/ घाव धोना चाहता हूँ।

इस शहर की कृपणता से/तंग इतना आ चुका हूँ,
थी नहीं उम्मीद पाने की/वही सब पा चुका हूँ।

सिसकियाँ लेकर मुझे जो/हाल बदला जा रहा है,
लिपट कर उस पेड़ से/कुछ देर रोना चाहता हूँ।

माँ रही भावुक कि मुझमें/ढूँढ़ती संभावनाएँ,
खींच कर ले जा रही हैं/अनगिनत शुभकामनाएँ।

एक सिक्का गाँठ से उसने दिया था,
अब उसी से खेत में जाकर/खरीदे बीज बोना चाहता हूँ।

चाचियों या मौसियों को ही/निशानी मानता हूँ,
देव मढ़िया में सुनी/सारी कहानी जानता हूँ।

जो भरी बरसात में मुझको सुहाती,
उस गली में मीत/बरसों बाद एकाकार होना चाहता हूँ।

मैं सुनाऊँगा तुम्हें रोचक/कथाएँ इस नगर की,
सुध मुझे लेनी अभी है/गाँव की सूनी डगर की।

रहट, कच्चे घर कुआँ खलिहान/मुझको टेरते हैं,
कुछ दिनों तक मैं इन्हीं के साथ खोना चाहता हूँ।

राम अधीर जी, के प्रगीतों का यथार्थ बोधी कथ्य, (प्रगीत शब्द इसलिए कि वह अपने गीत प्रगीत के नाम ही लिखते थे। हमेशा शोषण, अन्याय, छल, प्रपंच, अनीति, दमन, अत्याचार, अनाचार, तमाम राजनैतिक षड्यंत्रों, सत्ता और शोषकों के दोहरे मापदण्डों को उजागर कर, आम आदमी के पक्ष में, खड़ा करता रहा। वे भले ही अधीर और चिर असंतुष्ट प्रकृति के रहे हों यदि उनकी कुछ स्वाभाविक कमियों को छोड़ दें तो उनके यहाँ खूबियों की कमी नहीं थी। राम अधीर होना कोई आसान काम नहीं। राम अधीर होने के लिए पूरा एक युग जीना पड़ता है। भले ही वे अक्खड़ और अप्रिय भाषी रहे हों पर मन से वे पूरे शुद्ध थे। 8 फरवरी 2021 को उनके जाने के साथ ही संकल्प रथ का मजबूत पहिया हमेशा के लिए थम गया। उनकी स्मृति को नमन।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9301337806

डॉ. देवेंद्र तोमर

दोनों इक-दूजे के लिए

लेखकों के लिए पाठकों-श्रोताओं की घटती हुई संख्या चिंता का विषय बनी हुई है। ऐसी स्थिति में लेखक निराश-हताश होकर सारा दोष पाठकों के सिर मढ़ रहा है। जबकि पाठकों को पता ही नहीं है कि उनकी विकृत होती रुचि-अभिरुचि को केंद्र में रखकर लेखकों द्वारा उन पर कौन-कौन से आरोप लगाए जा रहे हैं। कुल मिलाकर लेखक अपने आप में त्रस्त हैं और पाठक-श्रोता अपने आप में मस्त।

शायद इस विषम और विकट परिस्थिति के लिए हम रचनाकार कहीं ज्यादा जिम्मेदार हैं। हमने कभी उन परिस्थितियों को लेकर गंभीरतापूर्वक आत्म-चिंतन नहीं किया जिनके चलते साहित्यिक लेखकों के साहित्यिक पाठकों-श्रोताओं की संख्या में भारी कमी आई है। प्रारंभ से ही रचनाकार के मूल्यांकन और पाठकों श्रोताओं को आकर्षित करने के दो पटल माने गए, एक तो आयोजन, जहाँ रचनाकार आकर श्रोताओं के समक्ष अपनी रचना प्रस्तुत करते हैं और दूसरा पटल है, पब्लिशिंग एरिया, अर्थात् प्रकाशन का क्षेत्र।

मैं वर्ष 1970 से आज पर्यंत दोनों ही क्षेत्रों की स्थितियों परिस्थितियों का साक्षी रहा हूँ। मैंने ऐसे ऐसे कवि सम्मेलन सुने हैं और जहाँ-तहाँ भागीदारी भी की है जो रात आठ बजे शुरू होते थे और सुबह छः बजे तक चलते थे। उन मंचों पर सर्व श्री गोपाल सिंह नेपाली, गोपालदास नीरज, बलबीर सिंह रंग, गोपाल प्रसाद व्यास, रमानाथ अवस्थी, रामअवतार त्यागी, भारत भूषण, सोम ठाकुर, मुकुट बिहारी सरोज, आनंद मिश्र, जैसे रचनाकार होते थे। इनमें एक-एक कवि ऐसा होता था जो 2 घंटे तक रचना पाठ करने के बाद भी जब बैठता था तो उसके लिए श्रोता दीर्घा से वंस मोर की आवाज ही आती थी अर्थात् उनकी कविता और उनकी प्रस्तुति में वह जादू था जो श्रोता को बाँध कर रख दिया करते थे। इस स्थिति का श्रेय दोनों पक्षों को जाता था। पंडित वीरेंद्र मिश्र, गोपालदास नीरज, रमानाथ अवस्थी, या रामअवतार त्यागी और भी कितने ही ऐसे नाम रहे, जिनके साहित्यिक गीत, समझदार श्रोताओं के हृदय पटल पर गहरी छाप छोड़ते थे। बहुत बार ऐसा होता था कि अनेक श्रोताओं को किसी गीतकार का कोई-कोई गीत उस गीतकार के गीत प्रस्तुत करते हुए ही कंठस्थ हो जाता था। बहुत बार ऐसा होता था जब कोई कवि अपनी कविता पढ़ रहा होता था तो भीड़ में से कोई श्रोता खड़े होकर कहता था कि आदरणीय इस पंक्ति में अमुक जगह पर लय भंग हो रही है, यहाँ मात्रा दोष है और दूसरी-दूसरी बातें... यही स्थिति प्रकाशन के क्षेत्र में थी। ऐसा

नहीं था कि जो कवि मंच पर प्रसिद्ध हैं, लोगों की दृष्टि में वही कवि हैं। उस जमाने में लगभग सभी कवि रचनाकार-गीतकार जो मंच पर प्रसिद्धि पा रहे थे पत्र-पत्रिकाओं में भी बड़े सम्मान के साथ प्रकाशित होते थे और उतने ही आदर के साथ उनको पाठकों द्वारा पढ़ा जाता था। उस समय की साहित्यिक पत्रिकाओं में साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्म युग, नवनीत, दिनमान, कादंबिनी के नाम प्रमुख थे। इन पत्रिकाओं में रचनाकार की रचना के प्रकाशित होने का अर्थ था वह रचना कला पक्ष और भाव पक्ष की दृष्टि से परिष्कृत और परिपूर्ण रचना है। पाठकों की प्रतिक्रिया के लिए सभी पत्रिकाओं में अलग से स्तंभ होता था जिसमें जो प्रतिक्रिया प्रकाशित होती थी वह साधारण पाठक की प्रतिक्रिया होने के बावजूद किसी उत्कृष्ट समीक्षा से कम नहीं होती थी। बहुत सारे पाठक तो अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के कारण ही बड़े रचनाकारों के निकट पहुँच जाते थे। अर्थात् बड़े रचनाकार स्वयं चाहते थे कि उनकी रचना का उचित मूल्यांकन हो अच्छी समीक्षा हो। लेखन में यदि कहीं त्रुटि रह गई है तो उसे उनको बताया जाए। यह काम न केवल संपादक करते थे बल्कि एक बहुत बड़े स्तर पर पाठकों का वर्ग भी ऐसा सक्रिय था जो इस काम को पूरी शिद्दत के साथ कर रहा था।

मुझे लगता है आज जो स्थिति बनी है उसके लिए दोनों ही पक्ष जिम्मेदार हैं रचनाकार यदि श्रोता पाठकों को दोष दें तो यह भी न्यायोचित नहीं है और श्रोता पाठक रचनाकारों को आरोपित करें तो यह भी उचित नहीं कहा जा सकता।

इस संबंध में समय-समय पर बड़े-बड़े रचनाकारों से संवाद करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। शब्द शैली के थोड़े बहुत अंतर से अधिकांश रचनाकारों ने यही कहा कि छंदबद्ध रचना और विशेष रूप से गीत का वातावरण नई कविता ने प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया। मैं व्यक्तिगत रूप से उन सम्मानित रचनाकारों के इस विचार से न तो तब सहमत था और न ही आज सहमत हूँ। मेरा कहना है कि नई कविता ने पत्र-पत्रिकाओं में स्थान भले ही पा लिया हो लेकिन मंच पर गीत की लोकप्रियता नई कविता के कारण समाप्त हुई हो ऐसा मुझे नहीं लगता। मंच पर गीत की लोकप्रियता या परंपरावादी गीत की लोकप्रियता कम हुई इसकी असली वजह क्या है, इस तरफ स्थापित गीतकारों ने भी गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया। लगभग यही बात प्रकाशन को लेकर कही जाती है। लोकप्रिय कविता के जागीरदार रचनाकारों का कहना है कि पत्र-पत्रिकाओं और स्कूली पाठ्यक्रम में छंद बद्ध रचना और गीत के लिए जो जगह थी उस जगह पर नई कविता ने कब्जा कर लिया। मैं यहाँ भी व्यक्तिगत रूप से इस बात से सहमत नहीं हूँ। इस संबंध में मेरा कहना है कि नई कविता का आंदोलन अपने उद्भव से लेकर आज पर्यंत एक निश्चित दिशा लेकर आगे बढ़ रहा है। नई कविता को मंच पर जगह नहीं मिली, यह देख कर नई कविता लिखने वाले कवि घर तो नहीं बैठ गए ना! या नई कविता कवि सम्मेलन सुनने वाले श्रोताओं के बीच लोकप्रिय नहीं हो पाई तो उन नई कविता के कवियों ने नई कविता लिखना छोड़ तो नहीं दिया ना! इसके उलट परंपरागत गीत लिखने वाले ढेरों गीतकार ऐसे रहे जिन्होंने इस विसंगति से घबराकर या तो मंच छोड़ दिया या फिर पहले हास्य की ओर और उसके बाद फू हड़ हास्य की ओर उन्मुख हो गए। जिसका जो भी दुष्परिणाम निकला वह आप सबके सामने है।

साहित्य की लोकप्रियता अथवा अच्छे साहित्य के लोकप्रियता विशेष रूप से कविता के क्षेत्र में

अथवा कविता के लिए पाठक सुविधाओं की घटती संख्या पर विचार करता हूँ तो मेरी दृष्टि में कुछ बातें सामने आती हैं। जिन्हें बहुत विनम्रता के साथ आप सबके समक्ष रख रहा हूँ। यह जो भी बातें कहीं जा रही हैं वे स्थितियों-परिस्थितियों को लक्ष्य करके कहीं जा रही है, किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके नहीं।

नई कविता प्रकाश रूप में सन् साठ में आई जबकि परंपरावादी गीत और मंच की लोकप्रिय साहित्यिक कविता दोनों ही 1975 के बाद गिरावट की ओर अग्रसर हुए।

नई कविता के बढ़ते प्रभाव से गीतकार घबरा गए और उन्होंने नई कविता से मुकाबला करने के लिए गीत छोड़कर हास्य लिखना और शुरू कर दिया। जबकि उस समय गोपाल प्रसाद व्यास, काका हाथरसी, रामरिख मनहर, ओम प्रकाश आदित्य और भी कई नाम अपनी अपनी शैली के हास्य रसावतार पैदा हो चुके थे इसलिए पाला बदलकर गीत से हास्य में पहुँचने वाले लोगों के लिए वहाँ कोई जगह थी ही नहीं। इसका दुष्परिणाम यह निकला कि जिस श्रोता पाठक वर्ग को जिस गीतकार के प्रति आस्था थी, जिस गीतकार के प्रति उसके मन में विश्वास था, उसे ठेस पहुँची और वह इस झगड़े से हटकर गोपाल प्रसाद व्यास, काका हाथरसी और ओम प्रकाश आदित्य के हास्य में ही रसानुभूति करने लगा, उस पाठक श्रोता ने ऐसे रचनाकारों को एक सिरे से खारिज कर दिया।

इस उथल-पुथल में एक बात और हुई, पंडित विश्वेश्वर शर्मा जैसे गीतकार मुंबई की तरफ रुख कर गए, जिनके लिए कवि सम्मेलन दोयम दर्जे की चीज बन गए। यही स्थिति हास्य में भी बनी, शैल चतुर्वेदी जैसे हास्य व्यंग्यकार धारावाहिक में कक्का जी बनकर आने लगे और कविता से उनका मोहभंग हो गया।

इस तरह दोनों प्रकार की स्थितियों में दोनों प्रकार की रचना परंपरागत गीत और हास्य पतन की ओर अग्रसर होता रहा।

इसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का फायदा उन लोगों ने उठाया जो आज कविता के सबसे बड़े झंडा वरदार कहे जाते हैं, मंच के सबसे महँगे कवि हैं। या फिर उन लोगों को लाभ हुआ जिन्होंने हास्य को फूहड़ हास्य में तब्दील करके रख दिया बल्कि अब तो अश्लील हास्य में अपनी जड़ें जमा चुके हैं।

एक और पक्ष है जिसे अक्सर दबी जुबान से कहा जाता है। खुलकर कोई कहने के लिए इसलिए तैयार नहीं होता कि उसे ऐसा कहने पर अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई देता है, वह पक्ष है आयोजक, संयोजक और कवयित्रियों का गठजोड़... जी हाँ! तीनों की अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ, तीनों के अपने-अपने सपने, तीनों के अपने-अपने दुराग्रह एक जगह आकर मिले और एक ऐसा मिश्रण तैयार हो गया जिसके सामने सफलता के सारे फार्मूले बौने साबित हो गये। चूँकि आयोजक मूल रूप में तो श्रोता या पाठक ही है और उधर हम यह तो जान ही चुके कि श्रोता या पाठक को कविता दिखाई नहीं दे रही थी, गीत सुनने को नहीं मिल रहा था। तब आयोजक बने उस श्रोता या पाठक ने सोचा, क्यों न इसमें से कुछ धन कमा लिया जाए! मैं इस देश के सैकड़ों आयोजकों को जानता हूँ जिनके लिखित पत्र मेरे पास रखे हैं, जिसमें उन्होंने लिखा है कि हम आपको कवि सम्मेलन में बुलाना चाहते हैं जिसमें आपको समुचित पारिश्रमिक भी दिया जाएगा किंतु उसमें से कम से कम 50 प्रतिशत राशि आप को नगद रूप में हमें लौटाना होगी। कुछ आयोजकों का कहना रहा है कि आप अपने साथ यदि किसी कवयित्री को ला सकें

तो हमारे कार्यक्रमों में आपका आना अभी के लिए भी और आगे के लिए भी पक्का है। यह रही एक पक्ष की बात दूसरा पक्ष है संयोजकों का। मेरा अनुभव है कि संयोजक कितना ही बड़ा रचनाकार हो अथवा उन्होंने कविता के नाम पर कभी कुछ न लिखा हो, लेकिन अगर संयोजक बन गए हैं तो समझिए किसी साहित्यिक आयोजन के संयोजक नहीं बल्कि नगरपालिका के ठेकेदार बन गए। संयोजक को सिर्फ यह दिखाई देता है जो वह उस बजट में से अधिक से अधिक कितना बचा सकता है, जो बजट उस कवि सम्मेलन के लिए निर्धारित किया गया है। बहुत सारे संयोजकों को ठेकेदार की शक्ल में देखता हूँ, वे एक लाख रुपये से लेकर दस लाख रुपये तक का ठेका कर लेते हैं। इतना ही नहीं पूरी राशि एकमुश्त आयोजक से वे अपने हाथ में लेते हैं और फिर अपनी सुविधा अपनी इच्छा और अपने अनुबंध के अनुसार कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले कवियों को बाँटते हैं। इसी शृंखला में तीसरा पक्ष है कवयित्रियों का। मैंने महादेवी वर्मा को तो नहीं सुना, हाँ माया गोविंद और ज्ञानवती सक्सेना से लेकर राजकुमारी रश्मि और माधुरी शुक्ला तक को सुना है, इनमें से किसको मंच पर प्रसिद्धि मिली और किसको नहीं मिल पाई यह बात भी जाने दीजिए, लेकिन दावे के साथ कहा जा सकता है कि इनके पास कविता थी, इनके पास स्वाभिमान था, इनके व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण था कि देखने वाले की दृष्टि में दोष आ ही नहीं सकता था, इनके पास इनका कृतित्व था। इनमें से हर एक कवयित्री ऐसी थी जो पूरी रात अकेले रचना पाठ कर सकती थी और श्रोताओं को बाँधकर रख सकती थी। आज के हालात देखता हूँ तो दुख होता है। छः महीने नहीं होते महिला रचनाकार के लेखन की उम्र एक साल भी नहीं हो पाती है और वह अखिल भारतीय स्तर की कवयित्री बनने का सपना देखने लगती है। महिला रचनाकार की इसी भावुकता और इसी महत्त्वाकांक्षा का लाभ आयोजक और संयोजक उठाते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तो तब बनती है जब लालच के जाल में फँसकर तीनों का गठजोड़ बन जाता है जो न केवल साहित्य को बल्कि समाज को भी बड़े स्तर पर प्रदूषित करता है।

विसंगतियों का विश्लेषण रूप प्रासंगिक है और उसका उद्घाटन भी आंशिक है। वास्तविक स्थिति इतनी भयावह है कि मैं यहाँ कह नहीं पाऊँगा और आप यहाँ पढ़ नहीं पाएँगे।

कुल मिलाकर बात यही कि अब रचनाकारों को सोचना होगा कि वह पाठक श्रोताओं जैसा बनना चाहते हैं या पाठक और श्रोता को अपने जैसा बनाने की क्षमता विकसित करना चाहते हैं। दोनों स्थितियों का भली-भाँति विश्लेषण करने के बाद मुझे लगता है एक अच्छा रचनाकार वही होगा जो पाठक और श्रोता के लिए लिखे, साहित्य का सृजन करे और एक अच्छा श्रोता एक अच्छा पाठक वही होगा जिसकी रुचि-अभिरुचि अच्छे साहित्य के श्रवण में हो, अच्छे साहित्य के पठन-पाठन में हो। अर्थात् दोनों एक-दूसरे के लिए लिखें। एक-दूसरे को पढ़ें एक-दूसरे को सुनें।

आपको यह आर्टिकल कैसा लगा? अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत कराइए!

सम्पर्क : मुरैना (म.प्र.)
मो. 7828148403

डॉ. नरेन्द्र कुमार मेहता

श्रीराम की बारात में महिलाओं की सहभागिता

महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदास जी कृत श्रीरामचरितमानस में श्रीराम द्वारा शिव-धनुष भंग होने के उपरान्त राजा दशरथ जी को श्रीराम के विवाह हेतु मिथिला नरेश ने दूतों द्वारा निमन्त्रण भेजा गया। इस निमन्त्रण पत्र के अनुसार अयोध्या से राजा दशरथजी गुरु वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, कात्यायन, ब्रह्मर्षि तथा मंत्रियों सहित श्रीराम के विवाह में सम्मिलित होने गए। दशरथ जी के दो पुत्र भरत एवं शत्रुघ्न भी उनके साथ गए थे। इनके अतिरिक्त दशरथ जी के साथ उनकी रानियों एवं दासियों का उनके साथ जाने का वर्णन नहीं है। इस तरह श्रीराम जी के विवाह में महिलाओं का बारात में न जाना उनकी सहभागिता का अभाव लगता है।

अत: सुधीजनों एवं पाठकों के लिए विभिन्न रामायणों में अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि श्रीराम जी के विवाह में बारात में उनके परिवार की महिलाओं (माताएँ-दासियों) की सहभागिता रही है। विवाह में गाना-बजाना न हो तो विवाह का आनन्द भी नहीं रहता है। श्रीराम जी के विवाह में जिन रामायणों में महिलाओं की सहभागिता रही है उन रामायणों में से यह प्रसंग दिया गया है। इन रामायणों में उस विशेष प्रदेश के विवाह-बारात के रीति रिवाजों की एक झलक भी दिखाई देती है।

1. तमिल कम्ब रामायण रचयता महर्षि कम्बन

एत्तिन रिमैयव रिलिन्द पूमलै/ बेततवै नडुक्कुर मुरिनदु वीरलनददे

(तमिल कृत्तिवास रामायण कार्मुक पटल 12-802)

एक ही क्षणमात्र में श्रीराम ने धनुष के एक सिरे को पैर के नीचे दबा लिया और उस धनुष को इस प्रकार झुकाया कि देखने वाले यही समझे कि यह धनुष तो इन्हीं के उपयोग में पहले से रहा मालूम पड़ता है। उसी समय उस स्वयंवर सभा में उपस्थित राजाओं ने टूट कर गिरा देखा। देवताओं ने श्रीराम की स्तुति कर पुष्प वर्षा की। महातपस्वी विश्वामित्र जी ने जनक जी को शीघ्र अपने पास बुलाने का कहा। यह सुनकर जनक जी को अपार आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने दूतों को बुलाकर विवाह निमंत्रण पत्र और वहाँ जाकर (मिथिला) का सारा हाल कहा। यह सन्देश दिया और उनको अयोध्या भेजा।

महाराज दशरथ ने अपने मंत्री, परिवार तथा अन्य राजाओं के साथ मिथिला (जनकपुरी) प्रस्थान किया। रानियाँ हथनियों पर बैठकर बारात में गईं। देवता लोग असुर, स्त्रियों के साथ आकाश में एकत्र हो

गए। उनको विश्वास हो गया था कि अब राक्षसों का जो कि विशाल लोकों को हानि पहुँचाते हुए सकुशल रह रहे हैं, उनके वर्गों के साथ उनका नाश निश्चित है। अतएव वे नाचने लग गए।

अेञ्जलि लुलहत् तल्ल वेरियडै यरश वेल्लम्/ कुञ्जरक कुलात्तिर चुर्रक कोररव निरून्द कूडम्
वेञ्जिनत् तनुव लानु मेरुमाल वरैयिर चेरूम्/ शेञ्जडर्क कडवु लेन्नत् तेरिन्मेर चेन्रू शेर्न्दान
(तमिल कम्ब रामायण बालकाण्ड शुभविवाह पटल 21-1313)

श्रीराम चलते हुए महामेरू पर जाने वाले सूर्य के समान उस विवाह मण्डप में पहुँच गए, जिसमें राजा दशरथ विराजमान थे और उनके चारों ओर गजदलों के समान शस्त्रधारी राजा थे। वे राजा अत्यन्त विशाल भूमि के राज्यों के राजा थे। श्रीराम शत्रुओं पर भयंकर क्रोध कर सकते थे और धनुर्विद्या के प्रवीण थे अर्थात् वे पराक्रमी और परंतप थे।

श्रीराम मण्डप के सामने रथ से उतरे। दोनों भाई भरत और लक्ष्मण पार्श्वों में हाथों का सहारा देने आए। श्रीराम ने मण्डप के अन्दर आकर महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र जी और शतानन्द जी को प्रणाम किया। तत्पश्चात् अपने पिताश्री महाराज दशरथ जी के चरणों की वन्दना करके उनके पास विराजमान हो गए।

उस दिन सवेरे वीर श्रीराम ने कांक्षणीय अग्रिमुख में घी के साथ होने वाले सभी होम किए, सम्पूर्ण मंत्र पूर्ण पढ़े और सीताजी के पल्लव-सम-पाणि को अपने विशाल पाणि से ग्रहण किया। विवाह विधि-विधान एवं आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। विवाह उपरान्त श्रीराम ने समस्त महर्षियों को दण्डवत किया फिर पिताश्री दशरथ जी के चरणों में सिर रखकर नमस्कार किया। श्रीराम ने कैकेयी के उज्ज्वल चरणों पर जननी माता (कौसल्या) को उतना ही अधिक मातृ-प्रेम के साथ नमस्कार किया। फिर क्रम से उन्होंने अपनी माता के पैर सिर पर धारण किए और पवित्र हृदयवाली सुमित्रा माता के पैरों पर नमस्कार किया। माताओं ने उन दोनों को खूब-खूब आशीर्वाद दिए। तदनन्तर तीनों भाईयों के विवाह भी सम्पन्न हुए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कम्ब रामायण में श्रीराम के विवाह में उनके माता-पिता, दासियों, मंत्री तथा अनेक महर्षि सम्मिलित हुए थे। विवाह में नारियों के जाने का विवाह के आनन्द उठाने का विस्तृत स्पष्ट वर्णन भी है। विवाह में बारात के समय महिलाओं की सहभागिता स्पष्ट दिखाई देती है।

2. मलयालम अध्यात्म रामायण-उत्तर रामायण रचयिता/ महाकवि तुञ्चतु रामानुजन् एलुत्तच्छन्

शिवजी (चन्द्रशेखर) के महिमान्वित धनुष को देखकर श्रीराम ने सानंद (धनुष को) प्रणाम किया। धनुष उठा सकते हो? बाण चला सकते हो? उसकी (धनुष की) धन्वा खींच सकते हो। ऐसे प्रश्न सुनकर विश्वामित्र जी के श्रीराम से कहा- निःशक हो जो कर सकते करो। इससे मंगल ही होगा।

मन्दहासवुं पूण्टु राघवनतु केट्टु मन्दमन्दं पोय्च्चेन्तु कण्टितु चापं। ज्वलिच्च तेजस्सौटु मैटुत्तु वेगत्तो टै कुलच्चु वलिच्चुटन् मुरिच्चु जितश्रमं। निन्तरुलुन्न नेरमीरेलु लोकङ्डलु मौन्नु माटोलिक्कोण्टु विस्मयप्पैट्टुजन। पाट्टुमाइवुं कूत्तु पुष्पवृष्टिथुमोरो कूट्ट मे वाद्यङ्डलुं मंगलस्तुतिकलूं देवकलोक्कै परमानंद पुण्टु देवदेवनै स्तुतिक्कयुप्सरः स्त्रीकलैल्लां उत्साहं कैकौण्टु विश्वेश्वरनुटै विवाहत्सावारंभ घोषं कण्टु कौतुकं पूटा।

(मलयालम अध्यात्मरामायण उत्तररामायण, बालकाण्ड सीतास्वयंवर 40)

यह सुनकर श्रीराम मुस्काये और मंद-मंद चलकर चाप देखा। तेजोज्वल श्रीराम ने धनुष वेगपूर्वक उठाया, लक्ष्य संधान किया, डोरी खींच ली और अनायास धनुष भंग किया। श्रीराम के ऐसा कर खड़े रहते

समय चौदह भुवनों के पिता हुए और सारे लोग विस्मय विमुग्ध हो गए।

तब जनक जी ने विश्वामित्र जी की वन्दना करते हुए बताया कि महाराज दशरथ जी को निमंत्रण देने के लिए अविलम्ब दूतों के हाथ पत्र भिजवा देना चाहिए। महर्षि विश्वामित्र तथा जनक जी ने मिलकर महाराज दशरथ को विश्वास दिलाते हुए, पूरे समाचार लिखे और दूत तुरन्त ही अयोध्या चल पड़े। जनक जी का सन्देश पाकर दशरथजी ने भी सब को मिथिला जाने का आदेश दिया। उनके गुरु वसिष्ठ अपनी पत्नी अरुन्धती के साथ निकले (चले)। चतुरंगिणी सेना, कौसल्या आदि पत्नियों, भरत-शत्रुघ्न पुत्रों एवं उत्सव (विवाह) के लिए विशेष वाद्यों के साथ उत्साहपूर्वक दशरथ मिथिलानगरी में पहुँचे तो मिथिलेश ने आगे बढ़कर उन सबका स्वागत किया।

इतने प्रसंग से ही स्पष्ट है कि दशरथ जी श्रीराम की बारात हेतु सपरिवार जिसमें रानियों, दासियों तथा दो पुत्रों सहित जनकपुर गए।

(प्रसिद्ध पुस्तक 'दशरथनन्दन श्रीराम' रचयिता चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य)

मिथिलानगरी से आए दूतों ने आकर राजा दशरथ जी को बताया कि आपके सुपुत्र श्रीराम ने सीतास्वयंवर के मंडप में शिव जी का धनुष चढ़ाकर उसे भंग कर दिया है। अब राजकुमार का विवाह सीता जी के साथ सम्पन्न कराने के लिए आपकी अनुमति माँगने और आपको मिथिला ले जाने के लिए हमें राजा जनक ने अयोध्या भेजा है। आपके पधारने से सभी अपार सुख और आनन्द प्राप्त करेंगे। अत: आप तुरन्त ही सपरिवार मिथिला को पधारने की कृपा करें।

यह सुखद समाचार सुनकर दशरथ जी आनन्द से अभिभूत हो गए। उन्होंने उसी समय मंत्रियों को बुलवाया, यात्रा का सब प्रबन्ध करने के निर्देश दिए तथा दूसरे दिन ही सपरिवार मिथिला को प्रस्थान किया।

अत: इस प्रसंग से स्पष्ट है कि श्रीराम के विवाह में राजा दशरथ, उनकी रानियाँ तथा दो पुत्रों सहित वे विवाह में सम्मिलित हुए। जबकि अन्य रामायणों-श्रीरामकथाओं में उनकी माताओं या अन्य महिलाओं का सम्मिलित होने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

(मैथिली रामायण रचियता कवीश्वर श्री चन्द्रा झा)

मैथिली रामायण में श्रीराम विवाह का वर्णन अन्य रामायणों से अधिक विस्तृत है। दशरथजी के साथ परिवार सहित बारात में मिथिला जाना वर्णित है। उनकी बारात में तीनों माताएँ-दासियाँ मंत्रीगण सहित अन्य महिलाओं की सहभागिता स्पष्ट है।

गुरु वशिष्ठ सौ-सौ बार मन्त्र पढ़-पढ़ कर श्रीराम को आशीर्वाद देते रहे और दर्शकवृन्द देखते रहे। शिव जी के धनुष को तोड़ने के लिए उदार श्रीराम जी तैयार हैं। अपनी-अपनी पत्नियों सहित देवतागण जय ध्वनि करने लगे। फूल बरसने लगे। प्रभु श्रीराम हाथ से धनुष खींच रहे हैं।

वार-सहित जयकार करथि गेय-सुरभार अवनि हर।
वर्ष सुमन मन हर्ष बहुत, प्रभु कर्ष धनुष कर।।
भड़ग धनुष रव चड़ग, भवन सब रड़ग अवनि पुनि।
चाप टूटल परिताप छूटल कह लोक अमृत धुनि।।
(मैथिली रामायण बालकाण्ड अध्याय-6-84-85)

अपनी-अपनी पत्नियों सहित देवा जय ध्वनि कर रहे हैं। धरती के भार का हरण हो रहा है। फूलों की वर्षा हो रही है। सबके मन में अपार हर्ष है। प्रभु रामचन्द्र हाथ से धनुष खींच रहे हैं। धनुष टूट गया। सारा संसार चकित हो उठा, धरती पर आनन्द की लहर फैल गई। धनुष टूटा। चिन्ता दूर हुई, लोग आनन्दपूर्वक बातें करने लगे।

श्रीराम के हाथ का स्पर्श होते ही धनुष टूट गया। मिथिलावासी बोल उठे विधाता ने हम लोगों की प्रतिष्ठा बचा ली। नगर की सारी नारियाँ और जनकजी की स्त्रियाँ बार-बार दूल्हे को देख रही थीं। महाराज जनक ने महर्षि विश्वामित्र से कहा 'अब तो राजा दशरथ जी के यहाँ निमन्त्रण जाना चाहिए। रानियों और बेटों के साथ राजा दशरथ आएँगे और अपने साथ जात-बिरादरी के लोगों की भारी बारात सजाकर लाएँगे। दूत पत्र लेकर वहाँ पहुँचा, जहाँ अयोध्या के राजा दशरथ इन्द्र के समान दरबार में विराजमान थे। जब दशरथ जी ने राम जी के कृत्य को सुना तो प्रसन्न हो उठे, मानों सूखा हुआ पेड़ हरा हो उठा हो। राजा दशरथ ने दूत को पुरस्कार के रूप में बहुत धन दिया। राजा दशरथजी ने मंत्रियों को बुलाया। सबको पत्र पढ़कर सुनाया कि, 'हम रानियों और राजकुमारों सहित मिथिला जाएँगे। जनक हमारे समधी होंगे, यह बड़े आनन्द की बात है।'

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चारों अंगोंवाली विशाल सेना और भारी सम्पत्ति साथ लेकर गुरु वसिष्ठ जी को आगे कर राजा दशरथ चले और बोले, मेरा मन हर्ष से विभोर हो गया।

हुति संग चलली रामक माय। हम रथ चढ़ि जाएब अगुआय।।
प्राप्त जनकपुर दशरथ भूप। अयला जनक समधि अनुरूप।।
(मिथिलारामायण बालकाण्ड अध्याय 6-धनुर्भग 120-121)

दशरथ जी के साथ राम जी की माता कौशल्या चली और बोली-मैं रथ पर चढ़कर आगे ही पहुँचूँगी। राजा दशरथ जनकपुर पहुँचे। समधी राजा जनक उनके पास आए और दूर से आकर अगवानी करके उन्हें अपने यहाँ ले आए। यही रीति उनकी जात-बिरादरी में प्रचलित थी।

अयोध्या के राजा दशरथ जी के आने पर दोनों राजकुमारों और रानियों को उसी भवन में ठहराया गया, जिसमें राजा दशरथ ठहरे थे। राजा जनक ने प्रसन्नतापूर्वक यथोचित स्थान की व्यवस्था करके उनके परिवार सहित सबको ठहराया। विवाह का प्रस्ताव लेकर शतानन्द जी राजा दशरथ के पास गए और कहा-

हे नृप-वर एव नृपति विचार। राजकुमार सभ होथु सदार।।
जनकात्मजा उर्मि्मलानाम। लक्ष्मण परिणय विधि तहिराम
जनक भ्रातृ कन्यादूइ गोटि। जेठि श्रुतकीर्ति माण्डवी छोटी।
भरत तथा शत्रुघ्न जमाय। यथासंख्य होमहि बुझ न्याय।।
से शुनि कहल अयोध्याधीश। अद्यटन घटना कर जगदीश।।
(मैथिलीरामायण बालकाण्ड सीता विवाह अध्याय 6-6 से 10)

हे महाराज हमारे राजा जनक की कामना है कि सभी राजकुमारों का विवाह करें। जनक जी की पुत्री उर्मिला नाम की है उनके साथ लक्ष्मण का विवाह किया जाए। जनक के भाई की दो कन्याएँ हैं- बड़ी श्रुतिकीर्ति और छोटी माण्डवी। इन दोनों का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न से होना परम अनुरूप

होगा। इतना सुनकर अयोध्या के नरेश दशरथ बोले- 'ईश्वर की कृपा से सब कुछ सम्भव है।'

दशरथ जी ने कहा राजा जनक की जो राय है नि:सन्देह इसमें मेरी भी सहमति है। तब उनके पुरोहित शतानन्द ने लौटकर राजा जनक से कहा कि चारों कन्याओं के लिए दूल्हे (वर) मिल गए। सारे नगर में यह बात फैल गई कि विवाह का शुभ सिद्धान्त (मैथिली के विवाह में शादी तय होने की रस्म को सिद्धान्त कहते हैं) हो गया है। सर्वत्र हलचल मच गई और उद्योग (व्यवस्था) प्रारम्भ किया गया। महिलाएँ विवाह सम्बन्धी गीत गाते हुए 'परिछनि' नामक रस्म (परम्परा) करने लगीं। विधिकारी (विवाह में दुलहिन की मदद करने के लिए तैनात महिलाएँ) मिथिला में प्रचलित रीति से रस्म करने लगीं। तदनन्तर श्रीराम सहित तीनों भाईयों के विवाह सम्पन्न हुए। डंका बोल उठा। सवारी चल पड़ी। बारात के साथ महाराज दशरथ विदा हुए। दशरथ जी और जनक जी दोनों समान समधियों के बीच प्रेमपूर्वक परस्पर अनुनय-विनय की बात हुई। इस वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों पक्षों की महिलाओं का भी रीति रिवाज में योगदान रहा है तथा दशरथजी श्रीराम के विवाह हेतु बारात में सभी रानियों तथा महिलाओं के सहित गए थे।

(अध्यात्मरामायण रचयिता महर्षि वेदव्यास)

महर्षि विश्वामित्र ने लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी से कहा- 'वत्स! अब हम महाराज जनक की नगरी मिथिलापुरी को चलेंगे। वहाँ यज्ञोत्सव देखकर फिर तुम अयोध्यापुरी को लौट सकते हो।' श्रीराम गंगा पार कर लक्ष्मण तथा विश्वामित्र जी के साथ मिथिलानगरी पहुँच गए। विश्वामित्र जी ने जनक जी से कहा-

पूजितं राजभि: सर्वैर्दुष्य मित्यनुशुश्रवे।/ अतो दर्शय राजेन्द्र शैवं चापमनुतमम्।

दृष्टवायोध्याँ जिगमिषु: पितरं द्रष्टुमिच्छति।। (अध्यात्मरामायण बालकाण्ड सर्ग 6-16)

हमने सुना है उस धनुष की तुम्हारे यहाँ पूजा होती है और सब राजा उसे देख गए हैं। अत: हे राजेन्द्र आप महादेव जी का वह उत्तम धनुष इन्हें दिखा दीजिए क्योंकि ये उसे देखकर शीघ्र ही अपने माता-पिता से मिलने के लिए अयोध्या जाना चाहते हैं।

तदनन्तर राजा जनक ने अपने बुद्धिमान मंत्री को भेजकर कहा कि तुम शीघ्र ही विश्वेश्वर (शिव जी) का धनुष लाकर श्रीरामचन्द्र जी को दिखाओ। मंत्री के चले जाने पर राजा ने विश्वामित्र जी से कहा यदि श्रीरामचन्द्र जी उस धनुष को उठाकर उसकी कोटियों पर रोंदा चढ़ा देंगे तो निश्चय मैं उन्हें अपनी कन्या सीता से उनका विवाह कर दूँगा। तब विश्वामित्र जी ने श्रीराम की ओर देखकर मुस्कुराते हुए कहा राजन! आप शीघ्र ही वह श्रेष्ठ धनुष रघुनाथ जी को दिखाओ। मुनीश्वर के इतना कहते ही बड़े-बड़े शक्तिशाली पाँच हजार धनुष-वाहक उस श्रेष्ठ धनुष को लेकर वहाँ आ गए। प्रसन्न चित श्रीरामजी ने उसे देखते ही दृढ़तापूर्वक कमर कसकर उस धनुष को खेल करते हुए बाएँ हाथ से उठाकर थाम लिया और सब राजाओं को देखते-देखते उस पर रोंदा चढ़ा दिया।

ईष्दाकर्णयामास पाणिना दक्षिणेन स:।/ बभञ्जाखिलहृत्सारो दिश: शब्देन पूरयन।।

(अध्यात्मरामायण रचयता वेदव्यास बालकाण्ड सर्ग 6-25)

तत्पश्चात् सबके हृदय सर्वस्थ भगवान् श्रीराम ने अपने दायें हाथ से उस धनुष को थोड़ा सा खींचा और दसों दिशाओं को गुञ्जायमान करते हुए तोड़ डाला। धनुष के दो खण्ड हुए देखकर राजा जनक ने श्रीराम का आलिंगन किया और अन्त:पुर के आँगन में स्थित सीता जी की माता अत्यन्त विस्मित हुईं।

सीता जी ने नम्रतापूर्वक मुस्काते हुए जयमाल श्रीराम के ऊपर (गले में) डालकर प्रसन्न हुईं। महाराज जनक जी ने मुनिवर विश्वामित्र जी से कहा–

भौ कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्रं प्रेषय सत्वरम्।
राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सुपत्रकः।।
विवाहार्थ कुमारणां सदारः सहमन्त्रिभिः।
तथेति प्रेषयमास दूतांस्त्वरित विक्रमान्।।
(अध्यात्मरामायण रचयता वेदव्यास बालकाण्ड सर्ग 6–33–37)

मुनिवर कौशिक जी! आप तुरन्त ही महाराज दशरथ के पास पत्र भेजिए, वे कुमारों के विवाहोत्सव के लिए शीघ्र ही पुत्र, महिषियों (रानियों) और मंत्रियों के साथ यहाँ पधारें। तब विश्वामित्र ने बहुत अच्छा कहकर शीघ्रगामी दूतों को (अयोध्या) भेजा।

दूतों ने जाकर दशरथ जी से श्रीराम का कुशलक्षेम कहा। उनसे रामचन्द्र जी के अद्भुत कृत्य का वृत्तान्त सुनकर राजा परमानन्द में डूब गए, फिर उन्होंने मिथिलापुरी चलने के लिए शीघ्रता करते हुए मंत्रियों से कहा–हाथी घोड़े रथ और पदातियों के सहित सब लोग मिथिलापुरी चलो।

रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम्।
वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः।।
राममातृः समादाय मुनिर्मे भगवान गुरु।
एवं प्रस्थाप्य सकलं राजर्षिर्विपुलं रथम्।।
(अध्यात्मरामायण बालकाण्ड सर्ग 6–37–38)

मेरा भी रथ तुरन्त ले आओ, देरी न करो, मैं भी आज ही चलूँगा अग्नियों के और अरुन्धती के सहित मेरे गुरु मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठ जी राम की माताओं को लेकर सबसे आगे चले।

इस प्रकार सबका कूच करा एक विशाल रथ पर आरूढ़ हो राजा दशरथ बड़े दल–बल के सहित शीघ्रतापूर्वक मिथिलापुरी को चले। उनके स्वागत हेतु राजा जनक अपने पुरोहित शतानन्द को साथ लेकर गए। उन पूजनीय राजा ने यथोचित रीति से उनका सत्कार पूजन किया। शुभ दिन, शुभ मुहूर्त और लग्न के समय धर्मज्ञ जनक जी ने श्रीराम को भाईयों सहित बुलाकर उनका विवाह कर दिया। विवाह मण्डप वेदपाठी ब्राह्मणों से भरा हुआ था और सुन्दर वस्त्र धारण किए निष्कण्ठी (सुहागिन) नारियों से समाकुल था।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि श्रीराम के विवाह की बारात में उनके परिवार की समस्त माताएँ तथा दासियाँ सम्मिलित हुई थी।

सम्पर्क : उज्जैन (म.प्र.)
मो. 9424560115

डॉ. पराक्रम सिंह

वर्तमान समय में प्रासंगिक होते कबीर

समय के अनुसार ही समाज का निर्माण होना उस युग या सदीं की अपनी विशिष्ट उपलब्धि होती है। समय और समाज के सामंजस्य के अभाव में उस अवधि का विकास सम्भव नहीं हो सकता। सामंजस्य के द्वारा ही व्यक्ति, परिवार, पड़ोस, ग्राम, जनपद तथा राष्ट्र का समुचित विकास एवं निर्माण का होना सुनिश्चित होता है। प्रत्येक बच्चे का जन्म यह बताता है कि अभी कुछ कार्य शेष रह गया है जिसे शायद वह पूर्ण करेगा और इस प्रकार निरन्तर जन्म और मृत्यु का क्रम सृष्टि का अनिवार्य हिस्सा बनता जाता है। मस्तिष्क के क्रमिक विकास में क्यों और कैसे जिज्ञासु प्रश्न व्यक्ति के जीवन को बदलने का कार्य करता है। क्यों जहाँ हमें स्वयं के बारे अर्थात् किस निमित्त आने की तरफ ले जाता है, वहीं दूसरी तरफकैसे विज्ञान और निर्माण की धारा से जोड़ता है। जीवन जीने की इसी कला में व्यक्ति अपने अनुसार उपर्युक्त प्रश्नों में से समाज को कुछ न कुछ देने का प्रयास करता है जो उस काल की उपलब्धि या अवशेष रूप में गिने जाते हैं। समय की उस दृष्टि को ध्यान में रखकर ही भविष्य का निर्धारण करना उस काल के बौद्धिक वर्ग से अपेक्षा होने लगता है जिसमें व्यक्ति, भाषा, समाज, संस्कृति, चरित्र मूल्य कला आदि को संरक्षित एवं विकसित करने की भावना को महत्त्व दिया जाता है।

समय और समाज की इसी अपेक्षा में अनेक महापुरुष अपने जीवन को अर्पित करने का नैतिक दायित्त्व मानकर एक नये युग का निर्माण भी करते हैं। इसी परम्परा में मध्यकालीन समय समाज, संस्कृति, सभ्यता के समवाहक संरक्षक रामान्दाचार्य जी जिनके मार्ग पर चलकर उनके शिष्यों ने रामानन्दी भक्ति परम्परा एवं सम्प्रदाय समाज की नींव रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

जाति, धर्म, शिक्षा से ऊपर उठकर केवल समाज कल्याण की भावना में सदैव अपने को अर्पित करने वाले इस युग के चिंतक, मनीषी, कवियों ने समाज को एक नई दिशा प्रदान कराने का प्रयास करते रहे। अनन्तानन्द, नरहर्यानन्द, पीपा, कबीर, रैदास, धन्ना सेन सहित रामानन्दी के बाहर शिष्यों में कबीर का आज वर्तमान समाज में लोकप्रियता एवं प्रासंगिकता अधिक व्याप्त है। कबीरदास समाज में जन्म और पालन-पोषण का अलग परिवेश का अन्तर करते हैं। कबीरदास जाति और धर्म को मिटाते हुए कहते हैं-

जाति न पूछो साधु की, पूछि लिजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार की, पड़ि रहति हैं म्यान।।

कबीरदास धर्म पर तीखा प्रहार करते हैं वे व्यक्ति को अधिक महत्त्व देते हैं, वे कहते हैं –

अरे ए दोनों राह न पाई।

हिन्दु की हिन्दुआई देखो, तुरकन की तुरकाई।।

कबीरदास परमात्मा की एक ही सत्ता पर बल देते हैं वे प्रत्येक जीव में उसी का अंश बताते हैं उनकी दृष्टि में कोई बड़ा नहीं है, सभी समान हैं–

एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।

एक ही खाक गढ़े सब भाँडे, एक ही सिरजनहारा।।

इसी प्रकार जहाँ एक ही तरह की प्रकृति सबके लिए निर्मित होने की बात कबीरदास जी ने किया है कुछ इसी तरह की बात रामानन्द के ही शिष्य रैदास (रविदास) कहते हैं –

जाति एक जामें एकहि चिन्हा, देह अवयव कोई नहीं भिन्ना।

कर्म प्रधान ऋषि–मुनि गावें, यथा कर्म फल तै सहि पावें।

जीव कै जाति बरन कुल ना ही जाति भेद हैं जग भूखाई।

नीति–स्मृति–शास्त्र सब गावें, जाति भदे शठ मूढ़ बतावें।

कबीरदास ने जाति–पाँति के साथ ही कर्मकाण्ड समाज में फैले ढोंग आडम्बर का विरोध करते हैं, वे कहते हैं –

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।

ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।

इसी प्रकार कबीरदास मुसलमानों को भी फटकार लगाते हैं–

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

उपर्युक्त कथन में कबीर दोनों धर्मों को फटकार लगाते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि कबीर ईश्वर को नहीं मानते, वे परमात्मा की सत्ता ब्रह्म ज्ञान के रूप में देखते हैं –

कहत 'कबीर' सुनहु रे लोई।

राँम नाम बिन और न कोई।।

इस प्रकार कबीर परमात्मा की सत्ता को स्थापित करते हुए गुरु को सर्वोच्च स्थान देते हैं। उनका मानना है कि बगैर गुरु के ज्ञान और जीवन की श्रेष्ठता को नहीं पाया जा सकता, वे कहते हैं–

पीछे लगा जाई था, लोक वेद के साधि।

आगे थै सत्गुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।।

उपर्युक्त कथन में जहाँ कबीरदास गुरु को मार्ग अर्थात् जीवन में प्रकाश लाने की बात करते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे ईश्वर से श्रेष्ठ गुरु को बताते हुए कहते हैं –

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो बताय।।

कबीरदास संसार में माया का मानव पर अधिक प्रभाव बताते हैं। वे जड़–चेतन पदार्थों में आभास

को मानव मन का ढोंग (प्रपंच) कहते हैं –

मन माया तो एक है, माया नहीं समाय।

तीन लोक संसय परा, काहि कह समझाय।।

इसी प्रकार वे माया को ठगिन बताते हुए कहते हैं –

माया महा ठगिन हम जानी।

कबीरदास पूर्वजन्म के ही कर्मों का फल आगामी जन्म में स्वीकार्य करते हैं, वे लोक से परलोक तक की अंतिम यात्रा में पूर्वजन्म को महत्ता को बड़ी ही सहजता से स्वीकार्य करते हैं। कर्म के आधार पर श्रेष्ठ जीवन जीने में अधिक विश्वास करते हैं –

पूरब जनम हम बाम्हन होते, ओछे करम तप हीना।

रामदेव की सेवाचूका, पकरि जुलाहा कीना।।

कबीरदास समाज में एक दूसरे के प्रति कम और आशंका के कारण जिस प्रकार सुख–शांति नहीं आ रहा है, इस पर भी वे लोगों को ध्यानाकर्षण कराते हैं–

कुसल कुसल की पूछते कुसल रहा न कोय।

जरा मुई न भय मुआ कुसल कहाँ ते होय।।

कबीरदास जी हिंसा से दूर रहकर जीवन जीने का संदेश देते हैं, वे कहते हैं –

दिनभर रोजा रहत हैं, राति हनत है गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।

इस प्रकार उपर्युक्त कथन के द्वारा जहाँ हमें रामानन्द के समकालीन तत्कालीन समाज, संस्कृति, धर्म, ज्ञान का दर्शन कबीर के माध्यम से हमारे समाने आता हैं, वहीं दूसरी तरफ रामानन्दी सम्प्रदाय के माध्यम से समाज में जागृति लाने का प्रयास दिखाई देता है। कबीर, रैदास, पीपा, नरहर्यानन्द जैसे अनेक संत, कवियों, चिंतकों ने समाज में एकता का भाव जगाकर स्वयं के मूल्यवान पर जोर दिया जिसकी आज आवश्यकता है। दूसरे के कार्यों की अपेक्षा अपने द्वारा किये गये कार्य को अधिक निकट से देखना जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। जीवन सभी एक समान है, आवश्यकता है उसके अन्दर स्वयं के खोज या एक अच्छे गुरु की जो जीवन को संवारता हुआ समाज, देश के लिए देता है। रामानन्दी के समय की आज भी प्रासंगिकता को रेखांकित होता दिखाई देता है, चाहे वह धर्म, जाति, आडम्बर को तोड़ने के लिए हो अथवा एक अच्छे गुरु और स्वयं परमात्मा का जीवन मानकर दूसरे में उसी का दर्शन कर कल्याण की भावना को जन्म देना हो, आज जिसकी माँग पुनः करता है समय।

सम्पर्क : नई दिल्ली

मो. 9039121891, 9873008397

महावीर रवांल्टा

हिन्दी के विकास एवं संवर्धन में गैर सरकारी संस्थाओं का योगदान

आज विश्व पटल पर हिन्दी की जो स्थिति है उसे प्रभावशाली बनाने में असंख्य रचनाधर्मियों, पाठकों, संपादकों, प्रकाशकों और अनेकानेक संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। दिनों-दिन उन्नति के शिखर की ओर बढ़ रही हिन्दी की विकास यात्रा में देशभर के अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थान अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन कर रहे हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी में सृजन कर रहे रचनाकारों की रचनाधर्मिता से न केवल दूसरे लोग परिचित होते हैं बल्कि उन्हें प्रोत्साहन के साथ एक मंच भी मिलता है जिससे वे एक-दूसरे की रचनाधर्मिता से परिचित ही नहीं होते अपितु आपसी सौहार्द्र का ऐसा वातावरण बन जाता है कि साहित्य से जुड़े लोग एक ही परिवार के सदस्य लगने लगते हैं।

देशभर में आज अनेक गैर सरकारी संस्थाएँ बेहद समर्पण भाव से हिन्दी के उन्नयन एवं विकास में जुटी हैं। ऐसी ही कुछ संस्थाओं के बारे में जानने और उनसे जुड़ने का सुयोग मुझे मिला जिनकी चर्चा मैं कर रहा हूँ। कानपुर की 'बिगुल' संस्था ने पहली बार 'सैनिक और उनका परिवेश' विषय पर अखिल भारतीय कहानी लेखन प्रतियोगिता के आयोजन का बीड़ा उठा कर अभिनव पहल की थी। इस प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानियों के साथ ही कुछ चयनित कहानियों को भी संस्था द्वारा प्रकाशित स्मारिका में स्थान दिया गया। कुछ समय बाद 'सैनिक कहानियाँ' कहानी संग्रह शीर्षक से इन कहानियों का प्रकाशन हुआ और सैनिक जीवन से जुड़ी कहानियों का यह अपने आप में ऐतिहासिक महत्त्व का दस्तावेज बन गया। ऐसे ही हरिद्वार की 'दीपशिखा' द्वारा अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता आयोजित कर श्रेष्ठ कहानियों को पुरस्कृत किया गया था। वर्तमान में देहरादून से शोध पत्रिका के कलेवर में प्रकाशित हो रही 'साहित्य प्रभा' एवं 'दून द्रोण' आदिम विकास समिति देहरादून ने अनेक वर्षों तक सम्मान समारोह आयोजित कर देशभर के साहित्यकारों को एक मंच पर लाकर उन्हें प्रोत्साहित करने और 'साहित्य प्रभा' में उनकी रचनाओं को प्राथमिकता से प्रकाशित करने में प्रशंसनीय कार्य किया।

जबलपुर की 'कादम्बरी' संस्था वर्षों से हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं की कृतियों को आमंत्रित कर उनमें से श्रेष्ठ कृतियों के कृतिकारों को भव्य समारोह में सम्मानित करती रही है। 'कादम्बरी' का सम्मान समारोह देशभर के रचनाधर्मियों के लिए किसी उत्सव से कम नहीं होता। भोपाल में स्व. अंबिका प्रसाद 'दिव्य' की स्मृति में किया जाने वाला आयोजन भी विभिन्न विधाओं की चयनित श्रेष्ठ कृतियों के लिए कृतिकारों को भव्य समारोह में सम्मानित करता आ रहा है जो कृतिकारों को अपने क्षेत्र में निरंतर श्रमशील बने रहने के लिए प्रोत्साहित करता रहता है। अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा संगठन एवं यू एस एम पत्रिका के संयुक्त तत्वावधान में गाजियाबाद में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले आयोजन में विभिन्न

विषयों पर साहित्यिक गोष्ठियों के साथ ही विभिन्न विधाओं के रचनाकारों को उनकी श्रेष्ठ कृतियों के लिए सम्मान के साथ संगोष्ठी एवं कवि सम्मेलन में प्रतिभाग करने का अवसर दिया जाता है। 'शब्द प्रवाह' उज्जैन द्वारा भी विभिन्न विधाओं की उत्कृष्ट कृतियों पर पुरस्कार दिया जाता है।

श्री गोविन्द हिन्दी साहित्य सेवा समिति मुरादाबाद द्वारा प्रतिवर्ष हिन्दी के उन्नयन एवं संवर्धन हेतु उत्कृष्ट लेखन के लिए रचनाकारों को उनकी श्रेष्ठ कृतियों के लिए सम्मानित किया जाता है। झारखण्ड का प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान 'स्पेनिन' (रांची) हिन्दी साहित्य की किसी एक विधा की श्रेष्ठ कृति पर 'डॉ. सिद्धनाथ कुमार सम्मान' एवं 'साहित्य गौरव सम्मान' प्रदान करता है। इसी तरह भोपाल की 'म. प्र. तुलसी साहित्य अकादमी' देशभर से चुने साहित्यकारों को उनकी श्रेष्ठ कृतियों के लिए सम्मानित करती है।

'साहित्यमंडल', श्रीनाथद्वारा' (राजस्थान) द्वारा आयोजित होने वाले भव्य सम्मान समारोह में हिन्दी साहित्य में अप्रतिम योगदान प्रदान करने वाले साहित्यकारों, संपादकों को सम्मानित किया जाता है। इस अवसर पर राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में देशभर से आए जाने-माने कवि काव्यपाठ करते हैं। हिन्दीतर प्रदेश गुजरात का संगिनी फाउंडेशन हिंदी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अभिनंदनीय कार्य कर रहा है। माधुरी घोष के संपादन में पिछले दस वर्ष से 'संगिनी' हिंदी मासिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन हो रहा है, जिसमें देश-विदेश के हिंदी लेखकों की रचनाओं को सम्मान प्रकाशित किया जाता है। सलूम्बर राजस्थान की 'सलिला संस्था' द्वारा स्व.ओंकारलाल शास्त्री परिजनों के सहयोग से प्रतिवर्ष साहित्य सम्मान आयोजित किया जाता है।

हिन्दी की विकास यात्रा में 'आधारशिला फाउंडेशन' हल्द्वानी (उत्तराखण्ड) का योगदान भी कम नहीं रहा। हिन्दी साहित्य जगत की प्रतिष्ठित पत्रिका 'आधारशिला' के माध्यम से देशभर के ख्यातिलब्ध साहित्यकारों की श्रेष्ठ रचनाओं को स्थान देने के साथ दूसरी भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ अनूदित रचनाओं का प्रकाशन भी इसमें होता रहा। इसके अलावा विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठ अनूदित रचनाएँ भी पत्रिका में प्रमुखता से छपती रही है। इतना ही नहीं आधारशिला फाउंडेशन द्वारा विश्व के अनेक देशों में हिन्दी सम्मेलन आयोजित कर इसके प्रचार प्रसार के लिए भगीरथ प्रयास किए गए जिनमें हिन्दी साहित्य में अप्रतिम योगदान के लिए रचनाकारों को सम्मानित भी किया जाता रहा।' साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय योगदान के लिए विद्वत साहित्यकारों को सम्मानित एवं प्रोत्साहित करने का बीड़ा उठाने वाले राजकुमार जैन राजन अब 'राजकुमार जैन राजन फाउंडेशन' व चित्रा प्रकाशन आकोला के माध्यम से इस क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दे रहे हैं। राष्ट्र कवि पं.सोहनलाल द्विवेदी, डॉ.श्री प्रसाद, बालशौरि रेड्डी एवं डॉ. राष्ट्रबन्धु के नाम पर सर्वोच्च बाल साहित्य सम्मानों के साथ ही अनेक दूसरे सम्मान स्थापित करने वाले और भव्य आयोजन पूर्वक इन्हें प्रदान करने वाले राजकुमार जैन राजन विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं के माध्यम से बाल साहित्य पुरस्कार प्रदान करने एवं श्रेष्ठ बाल साहित्य के प्रकाशन की मुहिम में जुटे हैं जो अपने आप में प्रशंसनीय व अनूठी मिसाल है। आप स्वयं प्रतिष्ठित रचनाकार हैं, जिनकी 40 के लगभग पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। राजकुमार जैन राजन साहित्यिक सम्मानों के साथ ही पुस्तक प्रकाशन अनुदान, उत्कृष्ट हिंदी बालसाहित्य के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद, नि:शुल्क बालसाहित्य वितरण का कार्य भी स्वयं के खर्च से अनवरत कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त 'सृजन महोत्सव', 'संगिनी' एवं 'साहित्य गुंजन' के संपादन के माध्यम से हिंदी के प्रचार प्रसार व नव लेखकों को प्रोत्साहन देने का अभिनन्दनीय कार्य भी कर रहे हैं।

बाल साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने एवं उन्हें मंच प्रदान करने के लिए 'बालवाटिका' (भीलवाड़ा) द्वारा प्रतिवर्ष बाल साहित्य सम्मान समारोह का आयोजन होता है जिसमें विचार गोष्ठी के साथ ही बाल साहित्यकारों को उनकी श्रेष्ठ कृति के लिए सम्मानित किया जाता है। इस अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में देशभर से आए कवि अपनी बाल कविताओं का भी पाठ करते हैं। 'बालप्रहरी' (त्रैमासिक) पत्रिका एवं बाल साहित्य संस्थान अल्मोड़ा द्वारा भी प्रतिवर्ष बाल साहित्य संगोष्ठी व सम्मान समारोह का आयोजन कर दस बाल साहित्यकारों को उनकी श्रेष्ठ कृतियों के लिए स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र व नगद राशि प्रदान कर सम्मानित किया जाता है। 'बालप्रहरी' के आयोजन को लेकर उल्लेखनीय बात यह है कि यह प्रत्येक वर्ष उत्तराखण्ड के अलग-अलग स्थानों पर आयोजित होता है और इसमें बच्चों की भी सक्रिय भागीदारी रहती है। 'उत्तराखण्ड बाल कल्याण साहित्य सेवा संस्थान खटीमा' द्वारा भी प्रतिवर्ष बाल साहित्य संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह का आयोजित होना अपने आप में अनूठा प्रयास है जिसमें बाल कवि सम्मेलन में देशभर से पधारे बाल साहित्यकार अपनी कविताओं के माध्यम से सक्रिय हिस्सेदारी करते हैं। बाल कल्याण एवं बाल साहित्य शोध केन्द्र भोपाल द्वारा भी प्रतिवर्ष बाल साहित्य में सक्रिय योगदान करने वाले साहित्यकारों को उनके योगदान के लिए भव्य समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस केन्द्र द्वारा 'अपना बचपन' बाल पत्रिका बाल पत्र का प्रकाशन भी नियमित रूप से किया जा रहा है।

पूर्वोत्तर की बात करें तो पूर्वोत्तर हिन्दी अकादमी हिन्दी के विकास में उल्लेखनीय कार्य कर रही है। पहली बार सन् 1972 ई में कहानी लेखन महाविद्यालय अंबाला से जुड़े व इसके निदेशक डॉ. महाराज कृष्ण जैन से प्रभावित रहे डॉ. अकेलाभाई ने 5 जून 2001ई को उनके निधन के बाद सन् 2002 ई से शिलांग में प्रतिवर्ष साहित्य मिलन शिविर को आयोजित करने का बीड़ा उठाया जिसमें देशभर के लेखक, कवि, पत्रकार व साहित्य प्रेमी सम्मिलित होते हैं। इस मिलन शिविर के माध्यम से उनकी हिन्दी के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले वरिष्ठ नागरिकों को सम्मानित करने की मंशा रही है। इसके साथ ही लेखक में लेखन की प्रवृत्ति को जाग्रत करना और परस्पर मेल मिलाप भी शिविर का उद्देश्य रहा। आज राष्ट्रीय हिन्दी विकास सम्मेलन के नाम से आयोजित होने वाले पूर्वोत्तर हिन्दी अकादमी के इस सम्मेलन में पूर्वोत्तर के कई लेखक हिंदी लेखन के क्षेत्र में दक्षता हासिल कर रहे हैं तथा दूसरे स्थानों से आने वाले लोग पूर्वोत्तर की संस्कृति व रीति-रिवाज से परिचित होकर अपनी कलम के माध्यम से उसे दूसरे लोगों तक भी पहुँचा रहे हैं। अब देश के विभिन्न प्रांतों के लोग इसमें प्रतिभाग कर हिन्दी के विकास में अपने योगदान को भी दर्ज कराते जा रहे हैं। कोरोना काल में आयोजन संभव नहीं हुए तो ऑनलाइन कार्यक्रम आयोजित कर विभिन्न संस्थाओं ने हिन्दी के विकास व प्रचार-प्रसार के लिए अपना प्रयास जारी रखा।

कहा जा सकता है कि देशभर में विभिन्न राज्यों की अनेक गैर सरकारी संस्थाएँ हिन्दी के लिए अविस्मरणीय कार्य कर उसे बेहद समर्थ व समर्थित भाषा बनाने में जुटी हैं। उनकी समर्पित भावना व निरंतर प्रयास को देखते हुए निश्चित रूप से हिन्दी का भविष्य और भी उज्ज्वल नजर आता है और वैश्विक स्तर पर उसे समृद्ध बनाने में सहायक होता है?

सम्पर्क : उत्तरकाशी (उत्तराखंड)
मो. 8894215441, 6397234800

डॉ. मनीष काले/डॉ. सोनाली नरगुन्दे

कर्मवीर से झलकता है दादा का पूरा व्यक्तित्व

कर्मवीर पत्रिका ने जनवरी 2022 में अपने एक सौ दो साल पूरे किये। कर्मवीर पत्रिका का गौरवशाली इतिहास रहा है और आज भी इस पत्रिका की अपनी अलग ही पहचान है। कर्मवीर पत्रिका अपने नाम को आज भी सार्थक कर रही है। कर्मवीर की पहचान उसकी ईमानदार लेखनी रही है, जिसे साकार किया कर्मयोगी पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने। पंडित चतुर्वेदी का नाम आते ही एक ऐसी पत्रिका आँखों के सामने आ जाती है, जिसने अपने शतकीय सफर में राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक जिम्मेदारियों को पूरी ईमानदारी से पूरा किया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर इस पत्रिका को 17 जनवरी 1920 को जबलपुर से प्रारंभ किया गया था। राष्ट्र सेवा लिमिटेड नामक एक समूह ने इसका प्रकाशन किया। पंडित माधवराव सप्रे, पंडित विष्णुदत्त शुक्ल और ठाकुर छेदीलाल सिंह ने राष्ट्र सेवा लिमिटेड की स्थापना की थी। सम्पादन का जिम्मा पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के हाथों था। महात्मा गाँधी के विचारों की छाप इस पत्रिका पर थी और गाँधी जी के नाम पर ही इसका नाम कर्मवीर रखा गया। दरअसर उस समय महात्मा गाँधी को कर्मवीर गाँधी के नाम से ही जाना जाता था। गाँधी जी के इसी सम्बोधन से पत्रिका का नाम कर्मवीर रखा गया। भले ही यह पत्रिका गाँधी जी के नाम से प्रभावित थी, लेकिन पंडित जी ने इसके नाम को सार्थकता दी। पंडित जी के व्यक्तित्व का अंदाजा इसी पत्रिका से लगाया जा सकता है। इसलिये बात कर्मवीर की।

पंडित चतुर्वेदी ने अपने संस्मरण जब मैंने घोषणा-पत्र भरा में 'कर्मवीर' का खुलकर जिक्र किया। उन्होंने लिखा- सन् 1920, मैं कर्मवीर निकालने के लिए जबलपुर गया। वहाँ गुरुवर पं. माधवराव सप्रे, दीवान बहादुर वल्लभदास जी और रायसाहब गोविन्दलाल जी पुरोहित थे। मेरे और दीवान बहादुर के वकील श्री कन्छेदीलाल जी जैन भी थे। जब मैं 'कर्मवीर' का डिक्लेरेशन लेने के लिए जिला मजिस्ट्रेट श्री मिथाइस आई.सी.एस. के पास गया उस समय राय बहादुर शुक्ल जी ने एक पत्र दिया था जिसमें लिखा गया था कि मैं बहुत गरीब हूँ और उदरपूर्ति के लिए कोई रोजगार करने के उद्देश्य से 'कर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकालना चाहता हूँ किन्तु मूझे यह शर्त स्वीकार नहीं थी। रायबहादुर शुक्ल जो समझाते थे कि मेरी घिग्घी बँधेगी और मैं मिस्टर मिथाइस के सामने कुछ बोल न सकूँगा। मिस्टर मिथाइस ने कहा 'एक अंग्रेजी वीकली के होते हुए आप हिन्दी साप्ताहिक क्यों

निकालना चाहते हैं?' तब मैंने निवेदन किया– 'आपका अंग्रेजी पत्र तो दब्बू है, मैं वैसा पत्र नहीं निकालना चाहता हूँ। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश शासन चलते–चलते रुक जाए।' कहना नहीं होगा कि मिस्टर मिथाइस मेरे कथन से बहुत प्रभावित हुए उन्होंने कहा– 'मैं ऐसे पत्र को देखना चाहता हूँ। मैं आइरिश हूँ और आइरिश यह देखना चाहते हैं कि आप शासन बिगाड़े और मैं ब्रिटिश शासन को ठीक से चलाऊँ।' इसके पहले मिस्टर मिथाइस कुछ कहें मैंने 2500 रुपये के नोट उनकी टेबल पर रख दिए। उनके बँगले पर ही हमारी बातचीत हुई थी। मुझे वह 2500 रु. के नोट दीवान बहादुर वल्लदास जी ने दिए थे कि जमानत देकर भी मैं कर्मवीर निकालूँ। उस समय सन् 1910 का प्रेस एक्ट प्रचलित था, जिसमें जमानत लेने पर कोई कारण डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को नहीं बताना पड़ता था और जमानत न लेने पर कारण बताना पड़ता था। मालूम होता था कि मिस्टर मिथाइस उन सबको और प्रेस एक्ट को भी पढ़कर वहाँ बैठे हुए थे, इसलिए चिढ़ जाते ही मुझे बुलावा भी दिया था। इसके पहले एक दीवान बहादुर महाशय (जो दीवान बहादुर वल्लदास नहीं थे और न दीवान बहादुर जीवनदास जी अंदर से निकले और सीधे अपनी गाड़ी में बैठकर चले गए थे। वे एक विक्टोरिया किस्म की गाड़ी अपने साथ लाए हुए थे जो साहब के बँगले के बाहर खड़ी थी।) मिस्टर मिथाइस ने मुझसे कहा, 'मैं तो आपसे जमानत लूँगा नहीं इसलिए यह रुपया अपनी ही जेब में रख लीजिए। मैं उस शासन को ठीक बनाऊँगा और आपको आलोचना का मौका न दूँगा'। उसी स्पष्टवादिता से मिस्टर मिथाइस मेरे मित्र हो गए। यहाँ तक की बाद में मेरे घर पर आकर चाय भी पी। मिस्टर मिथाइस ने मुझको सूचित किया 'मि. चतुर्वेदी आप भरपूर कोशिश कीजिए कि आपका पत्र सफल हो। मैं अपने शासन को अच्छा रखूँगा। ब्रिटिश शासन छुईमुई का पौधा नहीं। वह ट्रैक से नहीं उड़ाया जा सकता।' मैं चुपचाप मिस्टर मिथाइस की बात सुनता रहा। मेरी इच्छा उश्रर देने की हो रही थी, परन्तु मैंने रायबहादुर शुक्लजी के ख्याल से उत्तर नहीं दिया। इस तरह 17 जनवरी से 'कर्मवीर' का प्रकाशन जबलपुर में आरम्भ हुआ।

कर्मवीर ने सामाजिक मुद्दों के साथ ही आम आदमी की आवाज को पूरी ईमानदारी से उठाया। प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर भी कर्मवीर ने जमकर लिखा। 13 मार्च, 1920 को जब प्रेस की स्वतंत्रता को प्रेस एक्ट के माध्यम से छीना गया, तो 'कर्मवीर' में सम्पादक ने बेखौफ होकर टिप्पणी लिखी।

''जब से प्रेस एक्ट पास हुआ है तब से प्राय: 350 छापेखानों और 300 समाचारपत्रों से 6 लाख की जमानतें माँगी गई हैं। 500 से अधिक पुस्तकें जब्त की गई हैं और छापे प्राय: 200 खाने और 130 समाचार पत्र जमानत माँगी जाने के कारण प्रारंभ नहीं हो पाए। सच्चा सुधार तभी हो सकता है जब कि भारतवासियों के नागरिक अधिकारों की पूर्ण रक्षा की घोषणा की जावे, जिसमें जब वचन भी रहे कि छापेखाने स्वाधीन रहेंगे और छापेखानों या समाचार पत्रों की रजिस्ट्री के समय कोई लाइसेंस या जमानत नहीं माँगी जाएगी।''

सामाजिक मुद्दों पर भी कर्मवीर की लेखनी तीखी रही। सागर से 8 किलोमीटर दूर रतौना गाँव में अंग्रेजों ने कसाई खाना खोलने के लिये कंपनी को पट्टे के रूप में जमीन दी। कर्मवीर ने इसका विरोध किया। कई समाचार पत्र–पत्रिकाओं ने विरोध किया जिसमें जबलपुर से प्रकाशित 'ताज' भी

था। ताज के सम्पादक ताजुद्दीन की टिप्पणी पर उनके खिलाफ मुकदमा चलाकर उन्हें जेल भेज दिया था। इस पर कर्मवीर ने लिखा– ''दो महीने सत्ताईस दिन हुए मिस्टर ताजुद्दीन जेल में हैं और मध्यप्रांत के वे लोग जो अपने को राष्ट्रीय कार्य का अधिकारी समझते हैं इस बात की चिन्ता नहीं कर रहे हैं कि मि. ताजुद्दीन किस अवस्था में हैं? प्रांत में एक तो यों ही राष्ट्रीय कार्य करने वालों का टोटा है, जिस पर प्रांत के मि. ताजुद्दीन जैसे सेबक यदि महीनों जेल में सड़ते रहेंगे और मुकदमा पूरा न हो पाएगा तो हम सोचते हैं कि उन्हें अपराध प्रमाणित होने के प्रथम ही नरक–यातना के न जाने कितने कष्ट भोग चुकने पड़ेंगे। हम यह भी सुन रहे हैं कि मि. ताजुद्दीन बीमार हैं और उनका वजन घट चुका है। जब वे पेशियों पर आते हैं तब ऐसा जाता है कि उनके मुँह पर पीलापन छा गया है। हम न तो कौंसिल के मेम्बरों ही से निहोरा हैं, जो मध्यप्रांत का प्रतिनिधि का बहाना कौंसिल असेम्बली या कौंसिल ऑफ स्टेट में गए हैं, न हम सरकार को इस बात के लिए कष्ट देते हैं कि वह प्रांत के हृदय को जलाने वाली इस कार्यवाही को, जो मि. ताजुद्दीन जैसे अहिंसक असहकारितावादी पर की जा रही है, रुकवा दे और इस तरह अपनी उस बुद्धिमानी का परिचय दे जो उसने रतौना के समय की थी, किन्तु यह सब कुछ न कहते हुए भी हम अपने हृदयों से कहना चाहते हैं कि एक तो मि. ताजुद्दीन के पवित्र मिशन को पूरा करने और 'ताज' को जिन्दा रखने और डटकर काम करने के लिए सहारा दें और दूसरे मि. ताजुद्दीन को कारागार में रहने की यादगार, मध्यप्रांत में अहिंसक असहकारिता के आंदोलन को इतना ऊँचा उठावें कि वकील, विद्या, व्यापारी पढ़े और वे पड़े, किसान और मजदूर, सब असहकारिता के नाम पर कुर्बान होते और उसे तन–मन और धन से अधिकाधिक विजयी बनाते नजर आयें।''

कर्मवीर के एक सम्पादकीय को राजद्रोह के लिये उकसाने वाला माना गया। सम्पादक को जेल जाना पड़ा, जिसके कारण इसके प्रकाशन में कुछ बाधाएँ आयी। 1924 में कर्मवीर का प्रकाशन बंद हो गया।

एक साल बाद 1925 में पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने कर्मवीर का प्रकाशन फिर से शुरु किया। 4 अप्रैल 1925 के प्रथम अंक में उन्होंने 'कर्मवीर का जन्म' शीर्षक से एक टिप्पणी लिखी, जिसमें उन्होंने कर्मवीर को फिर से जीवित करने के उदेश्य का उल्लेख किया।

'कर्मवीर' का जन्म हो रहा है। ऐसे समय कुछ कहने की प्रथा है किन्तु मैं तो फिर भी यही कहूँगा कि कहकर दिखाने के लिए पास कुछ नहीं। इसके सिवा यदि गत सोलह वर्षों के नम्र प्रयत्न अभी तक कुछ नहीं कर चुके तो आज की दो–चार पंक्तियाँ क्या कह देंगी। हाँ, क्षेत्र की कठिनाइयों और बेसमझियों को हटाने और स्पष्ट करने के लिए जो कुछ कहना आवश्यक है वह यह–दोष हो या गुण हमें यह बात स्पष्ट कहनी चाहिए कि राष्ट्र की सेवा के सम्मुख किसी दशा विशेष का कोई पक्ष हमारे पास न होते हुए भी हमारे सामने असहयोग जीवन का एक हिस्सा, जरूरत की आवश्यक पूर्ति और राष्ट्रीयता का एक अग्रगामी स्वरूप है। शासन प्रणाली के पापों और अत्याचारों से झगड़ना किसी भी अन्य देश के हमें पराधीन बनाए रखने वाले मीठे और कड़वे सादे और तीक्ष्ण सब प्रकार के संबंधों को तोड़ना अपनी तथा अपने देश की कमजोरी का अंत करना जो राष्ट्र को हानि पहुँचाकर व्यक्ति को महत्त्व देती है और जो हमारे आडम्बर अभिमान, आकर्षण और अज्ञान को उभारकर हमें

देश की शक्तियों का संयुक्तकारी और निर्माणकर्ता बनाने के बजाए देश के टुकड़े-टुकड़े करने वाला साबित करती है और अपने देश की स्वाधीनता और अपने हृदय के विकास की सबलता को हर स्थान पर आगे बढ़ाना और स्वाधीनता को किसी भी कीमत पर भगवान का स्मरण रखते हुए बेचने को तैयार न होने यही हमारा उद्देश्य है। प्रभु करे, सेवा के इस पथ में मुझे अपने दोनों का पता रहे और आडम्बर, अभिमान और आकर्षण मुझे अपने पथ से न भटका पावें।'' खण्डवा से प्रकाशित कर्मवीर में 10 पृष्ठ ये और वार्षिक मूल्य 3 रुपये था।

प्रताप में 5 जून, 1930 को एक समाचार प्रकाशित किया गया था, जिसका शीर्षक था-'कर्मवीर का प्रकाशन स्थगित'। समाचार था- 'जिस घटना की कई दिनों से आशंका थी, वह 19 मई की रात को घट गई। खण्डवा के डिप्टी कमिश्नर मि. स्मेली ने कर्मवीर के वर्तमान संपादक पं. सिद्धनाथ माधव आगरकर को दो नोटिस दिए। एक नोटिस द्वारा आपसे कर्मवीर प्रेस और पत्र का नया डिक्लेरेशन जारी करने और दूसरे नोटिस द्वारा कर्मवीर प्रेस आर पत्र के नाम 500-500 सौ रुपये की दो जमानतें दाखिल करने की माँग की गई।' श्रीयुत आगरकर जी प्रेस आर्डिनेंस के अनुसार, जमानतें देकर पत्र निकालने की नीति को कांग्रेस की प्रतिज्ञा के प्रतिकूल समझते हैं। अतएव उन्होंने लिखा 'जब तक भारत सरकार प्रेस के काले कानून को उठा नहीं लेती तब तक कर्मवीर के प्रकाशन को स्थगित रखने का निश्चय किया है। अत: कर्मवीर के ग्राहकों, पाठकों, शुभ चिंतकों आदि को कर्मवीर पर पड़ने वाले इस संकट से विचलित न होना चाहिए। हम उम्हें विश्वास दिलाते हैं कि ज्यों ही देश में पत्रों के साँस लेने योग्य वातावरण के दर्शन होंगे त्यों ही कर्मवीर पुन: उनकी सेवा में द्विगुण उत्साह और जोश के साथ उपस्थित होगा।

8 जनवरी 1931 के प्रताप में एक समाचार छपा, जो कर्मवीर के पुन: जीवित होने के संकेत थे। समाचार कर्मवीर के सम्पादक सिद्धनाथ आगरकर के रायपुर जेल से रिहाई का था। सन 1931 में ही जेल से छुटने के बाद माखनलाल जी ने फिर से कर्मवीर की कमान अपने हाथों में ली। आत्म निवेदन शीर्षक से उन्होंने एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने अपने मन की बात पाठकों को कही। 1959 में माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कर्मवीर' को अलविदा कहा। इसके बाद इसकी कमान उनके छोटे भाई बृजभूषण चतुर्वेदी के हाथों में आ गई। 1977 तक कर्मवीर का प्रकाशन होता रहा। इसके बाद कर्मवीर जैसी पत्रिका की डगर कठिन रही। 1997 में विजयदत्त श्रीधर ने कर्मवीर को भोपाल से फिर निकालना शुरू किया। यह यात्रा आज भी जारी है। श्रीधर जी ने कर्मवीर को जीवित रखा और अपने दम पर इसे नई पहचान दी। श्रीधर जी का यह प्रण आज भी जीवित है और इसी प्रण ने कर्मवीर को जीवित रखा।

सम्पर्क : इंदौर म.प्र.

प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा

शिप्रा-चंबल संगम 'शिपावरा': मानवीय सभ्यता की पुरातन स्थली

पुरातन काल से भारतभूमि के प्रमुख तीर्थ क्षेत्रों में अवन्ती क्षेत्र, शिप्रा और महाकालेश्वर की महिमा का गान स्थान-स्थान पर हुआ है। अपनी पुरातनता, पवित्रता एवं मोक्षदायी स्वभाव के कारण भारत की प्रमुख नदी-मातृकाओं में प्रसिद्ध 'शिप्रा' युगों-युगों से लोक-आस्था का केंद्र बनी हुई है। शिप्रा का उद्गम मध्यप्रदेश के महू नगर से लगभग 11 मील दूर स्थित कांकर बर्डी पहाड़ी से हुआ है। यह मालवा में लगभग 120 मील की यात्रा करती हुई चम्बल (चर्मण्यवती) में मिल जाती है। महाकवि कालिदास ने शिप्रा, चर्मण्यवती और गंभीर का सरस वर्णन 'मेघदूत' में किया है। शिप्रा अपने उद्गम से संगम तक खान, गंभीर, ऐन, गांगी और लूनी को समाहित करती हुई चम्बल में अंतर्लीन हो जाती है। शिप्रा की कई सहायक नदियों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलता है, यथा गंधवती, नीलगंगा, ख्याता, फाल्गु, सरस्वती, खगर्ता, कौशिकी, सोमवती या चंद्रभागा आदि, जिनमें से अधिकांश या तो लुप्तप्राय हैं या संकटग्रस्त। शिप्रा और चम्बल का संगम स्थल शिपावरा या सिपावरा के नाम से सुप्रसिद्ध है, जो सीतामऊ (जिला-मन्दसौर) और आलोट (जिला-रतलाम) के मध्य में है। वहाँ पहुँचकर शिप्रा अपने प्रवाह की विपुलता से चम्बल में संगमित होने की तत्परता और उछाह को प्रकट करती है।

रतलाम जिले की आलोट तहसील के अर्न्तगत शिपावरा ग्राम (स्थिति- 23.908 उत्तरी अक्षांश, 75.483 पूर्वी देशांतर) से करीब आधा किमी दूर शिप्रा एवं चम्बल नदी का संगम है। यह स्थान सिपावरा के नाम से भी जाना जाता है। पहले यह गाँव संगम के समीप स्थित था, जिसके साक्ष्य विपुल पुरासामग्री से युक्त विशाल टीले से मिलते हैं। शिपावरा में प्रागैतिहासिक काल से लेकर परमार और मराठा काल तक की पुरा-सम्पदा के महत्त्वपूर्ण प्रमाण उपलब्ध हैं, जो इस सुरम्य प्राकृतिक-धार्मिक स्थान की युग-युगांतर में व्याप्त महिमाशाली स्थिति को प्रतिबिम्बित करते हैं।

शिप्रा का पावन तट अनेक सहस्राब्दियों से मानवीय सभ्यता का क्रीड़ा स्थल रहा है। यजुर्वेद में 'शिप्रे अवे: पय:' के द्वारा शिप्रा का स्मरण हुआ है। निरुक्त में 'शिप्रा कस्मात्' इस प्रश्न को उपस्थित करके उत्तर दिया गया है 'शिवेन पातितं यद् रक्तं तत्प्रभवति, तस्मत्' अर्थात् शिप्रा क्यों कही जाती है? इसका उत्तर था शिवजी द्वारा जो रक्त गिराया गया, वही यहाँ अपना प्रभाव दिखला रहा है, नदी के रूप

में बह रहा है, अत: यह शिप्रा है। प्राचीन ग्रन्थों में शिप्रा और सिप्रा- दोनों नाम प्रयुक्त हुए हैं। इनकी व्युत्पत्तियाँ क्रमश: इस प्रकार हैं 'शिवं प्रापयतीति शिप्रा' और 'सिद्धिं प्राति पूरयतीति सिप्रा।' और कोशकारों ने सिप्रा का एक अर्थ करधनी भी किया है। तदनुसार यह नदी उज्जयिनी के तीन ओर से बहने के कारण करधनीरूप मानकर भी सिप्रा नाम से मण्डित हुई। उन दोनों नामों को साथ इसे क्षिप्रा भी कहा जाता है। यह उसके जल प्रवाह की द्रुतगति से सम्बद्ध प्रतीत होता है।

अवन्ती क्षेत्र के विश्व-कोश के रूप में विख्यात स्कन्दपुराण में शिप्रा नदी का बड़ा माहात्म्य बतलाया है। यथा-

नास्ति वत्स! महीपृष्ठे शिप्राया: सदृशी नदी।
यस्यास्तीरे क्षणान्मुक्ति: कच्चिदासेवितेन वै।।

अर्थात् हे वत्स! इस भू-मण्डल पर शिप्रा के समान अन्य नदी नहीं है। क्योंकि जिसके तीर पर कुछ समय रहने से तथा स्मरण, स्नान-दानादि करने से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

शिप्रा के कई नाम हैं, जैसे ज्वरघ्नी, अमृतोद्भवा, कल्पनाशिनी, कामधेनु-समुद्भवा, त्रैलोक्यपावनी, विष्णुदेहोद्भवा आदि। इन संज्ञाओं से जुड़ी शिप्रा की उत्पत्ति के संबंध में कई कथाएँ वर्णित है। जैसे यह विष्णुदेहोद्भवा है, एक कथा में कहा गया है कि विष्णु की अँगुली को शिव के द्वारा काटने पर उनका रक्त गिरकर बहने से यह नदी के रूप प्रवाहित हुई। इसीलिये 'विष्णुदेहात् समुत्पन्ने शिप्रे! त्वं पापनाशिनी' के माध्यम से शिप्रा की स्तुति की गई है। शिप्रा को गंगा भी कहा गया है। पंचगंगाओं में एक गंगा शिप्रा भी मान्य हुई है। अवन्तिका को विष्णु का पदकमल कहा है और गंगा विष्णुपदी है, इसलिये भी शिप्रा को गंगा कहना नितान्त उपयुक्त है। कालिकापुराण में वर्णित शिप्रा की उत्पत्ति-कथा के अनुसार, मेधातिथि द्वारा अपनी कन्या अरुन्धती के विवाह-संस्कार के समय महर्षि वसिष्ठ को कन्यादान का संकल्प अर्पण करने के लिये शिप्रासर का जल लिया गया था, उसी के गिरने से शिप्रा नदी बह निकली बतलाई है। शिप्रा का अतिपुण्यमय क्षेत्र भी पुराणों में दिखाया है-

शिव सर्वत्र पुण्योस्ते ब्रह्महत्यापहारिणी।
अवन्तयाँ सविशेषेण शिप्रा ह्युत्तरवाहिनी।।
तथा संगम नीलगंगाया यावद् गन्धवती नदी।
तयोर्मध्ये तु सा शिप्रा देवानामपि दुर्लभा।।

शिप्रा नदी वैसे तो सर्वत्र पुण्यमयी है, ब्रह्म-हत्या के पाप का निवारण करनेवाली है, किन्तु उज्जयिनी में उत्तरवाहिनी होने पर और भी विशिष्ट हो जाती है। नीलगंगा के संगम से गन्धवती के बीच जो क्षिप्रा बहती है वह देवों के लिए भी दुर्लभ है। इसलिए क्षिप्रा के नाम-स्मरण का महत्त्व भी प्रतिपादित है।

शिप्रा शिप्रेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्य शिवलोकं स गच्छति।।

अर्थात् सौ योजन (चार सौ कोस) दूर से भी यदि कोई शिप्रा ऐसा स्मरण करता है तो वह सब पापों से छूट जाता है और शिवलोक को प्राप्त करता है।

प्राचीन काल से ही नदी तट प्राणिजगत के नैसर्गिक वासस्थान रहे हैं। भारतीय शास्त्रों में आध्यात्मिक साधना के लिए नदी तटों का आश्रय उत्तम माना जाता है। ऋषि-मुनि, साधकगण सांसारिक बंधनों से मुक्त रहते हुए ऐसी पवित्र नदियों के तटों पर अपने आश्रमादि बनाकर उपासना करते थे। स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड में शिप्रा के वर्णन के अतिरिक्त इसके तटों पर बने हुए तीर्थस्थलों (घाटों) की भी महिमा बतलाई है। पिशाचमुक्तेश्वर तीर्थ के समीप शिप्रा मन्दिर अतिप्राचीन काल से रहा है। रामघाट, नृसिंहघाट आदि अपनी महिमा बनाए हुए हैं तथा वहाँ स्थित विभिन्न देवालय भी अपनी महत्ता रखते हैं। शिप्रा के दूसरी ओर बने घाट और दत्त अखाड़े का भी विशिष्ट महत्त्व है। उज्जयिनी शिप्रा के उत्तरवाहिनी होने पर पूर्वीतट पर बसी है। ओखलेश्वर से मंगलनाथ तक यह पूर्ववाहिनी हैं। सिद्धवट और त्रिवेणी में स्नान-दानादि करने की विशेष महिमा मानी गई है। शिप्रा नदी में नृसिंह घाट के पास कर्कराजेश्वर मंदिर है। ऐसी मान्यता है कि वहीं पर कर्क रेखा, भूमध्य रेखा को काटती है। स्पष्ट है कि कालगणना की दृष्टि से भी शिप्रातट की महिमाशाली स्थिति रही है।

शिप्रा और चंबल के पावन संगम पर स्थित 'शिपावरा' अत्यंत रमणीय स्थल है। दिल्ली-मुंबई रेल-लाइन पर स्थित विक्रमगढ़-आलोट स्टेशन से यह लगभग 25 किमी दूर स्थित है। आलोट से कराड़िया, बरखेड़ा कलाँ और मोरिया होकर शिपावरा पहुँचा जा सकता है। एक रास्ता आलोट से विक्रमगढ़, खजूरी देवड़ा, रजला और मोरिया होकर शिपावरा जाता है।

शिपावरा पाँच हजार वर्ष पुरातन सभ्यता के अवशेषों को समेटे हुए है। 1992 ईस्वी में सुधी पुराविद डॉ. श्यामसुंदर निगम के मार्गदर्शन में मेरे द्वारा शिपावरा क्षेत्र को लेकर किए गए समन्वेषण में विपुल पुरासामग्री का अनुशीलन किया गया था। इस कार्य में शिक्षाविद श्री कैलाशचंद्र दुबे, कलामनीषी श्री रमेश सोनगरा और विवेक नागर सहभागी बने थे। 1990-97 के दौर में आलोट-सोंधवाड़ क्षेत्र की कई प्रागैतिहासिक बस्तियों के समन्वेषण की राह खुली थी, जिनमें कलस्या, धरोला, गुलबालोद, कराड़िया, शिपावरा आदि प्रमुख हैं। उस दौरान शिपावरा संगम के समीपस्थ टीले से मानवीय सभ्यता के अनेक स्तरों के पुरा साक्ष्य मिले थे।

शिपावरा में नवपाषाण और ताम्राश्मयुगीन सभ्यता के अवशेष बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं, जिनका समय 2000 से 3000 ई. पू. अनुमानित है। यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों में अनेक प्रकार के लघु औजार यथा- क्रोड, लुनेट फलक, माइक्रो लिथ के साथ ही मनके, मृद्भांड, बीट्स आदि प्रमुख हैं, जो इस स्थल पर विकसित सभ्यता के हड़प्पाकालीन सभ्यता के समकालीन होने को प्रमाणित करते हैं। उल्लेखनीय है कि शिप्रा तट पर स्थित पुरास्थल महिदपुर में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा करवाए गए उत्खनन में विपुल मात्रा में लघुपाषाण से ताम्राश्मयुगीन सभ्यता के अवशेष मिले थे, वहीं प्राचीन स्वर्णाभूषण की भी प्राप्ति हुई थी, जो मालवा में अब तक हुए पुरान्वेषण में अद्वितीय है। शिपावरा के समीपस्थ टीले के संरक्षण की आवश्यकता है, वहीं यहाँ पुरातात्विक उत्खनन की अपार संभावनाएँ हैं।

शिपावरा स्थित शिप्रा-चंबल संगम पर मंदिर और समाधियाँ बनी हुई हैं। यहाँ एक शिव मंदिर है, जहाँ दीपेश्वर महादेव पूजित हैं। ऐसी मान्यता है कि यहाँ बड़ी मात्रा में मिट्टी के दीपक निकलते रहे

हैं। इसलिए यह संज्ञा पड़ी। यहाँ परमारकाल के खंडित अभिलेख के साथ देवालयों के भग्नावशेष यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। कुछ अवशेषों का उपयोग घाट और नए मंदिरों के निर्माण में किया गया है। संगम-तट पर नाथपंथी साधुओं की समाधियाँ निर्मित हैं, जिनकी लोक-मानस में 'जीवित समाधि' के रूप में प्रतिष्ठा मिली हुई है। यहाँ रियासतकालीन शिकारगाह भी बना हुआ है, जिसका प्रयोग जावरा के नवाब किया करते थे। पुराविद डॉ. अजीत रायजादा के अनुसार- नदी के तट के घाट और मंदिरों का पुनर्निर्माण मराठा काल में हुआ। पुनर्निर्माण में परमारकालीन मंदिरों के अवशेषों का प्रयोग किया गया है। यत्र-तत्र लगे परमार स्थापत्य एवं मूर्तिकला के कारण इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। Art, Archaeology and History of Ratlam] Sharada Prakashan] Delhi] 1992] शिपावरा में मकरसंक्रांति, महाशिवरात्रि, गुरु पूर्णिमा जैसे विशेष पर्वों पर बड़ी संख्या में धर्मालुजन जुटते हैं और स्नान-दान का पुण्यार्जन करते हैं।

शिपावरा के समीप बरखेड़ा कलाँ से उत्तर दिशा में लगभग दो किमी दूर चम्बल नदी के मध्य में जोगनीया माता जी का प्राकृतिक कुंड़ है। यहाँ सिंह पर सवार दुर्गा की प्रतिमा स्थापित है, जो जोगनीया माता के नाम से लोक-आस्था का प्रतीक बनी हुई है। ऐसी मान्यता है कि जोगनीया माता सभी भक्तों की मनोकामनायें पूरी करती हैं। यहाँ प्रति रविवार भक्तों की भीड़ उमड़ती है। नवरात्रि में यहाँ विशेष पूजा-अनुष्ठान होते हैं, जिसमें हजारों की संख्या में भक्तगण सम्मिलित होते हैं।

स्पष्ट है कि शिप्रा आकार-प्रवाह में लघु होकर भी सदियों से लोक-आस्था से लेकर पौराणिक-साहित्यिक संदर्भों में महत्त्वशाली बनी हुई है। आखिर क्यों न हो, वह सदियों से प्रतिकल्पा उज्जयिनी और अवन्ती परिक्षेत्र की अमृतसंभवा बनी हुई है। उसके तट पर स्थित पुण्यफलदायी तीर्थों के मध्य 'शिपावरा' एक अनन्य पुरास्थली के रूप में युगों-युगों से बहती शिप्रा की कथा को कल-कल स्वरों में निनादित कर रहा है।

सम्पर्क : उज्जैन (म.प्र.)
मो. 9826047765

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

हिन्दी कवि सम्मेलन शताब्दी : कानपुर से गूगल हेड क्वाटर तक

हर दिन त्योहार, हर दिन पर्वों के आनंद का उल्लास, पर्वों की परम्परा में आनंद की खोज और उसी खोज से अर्जित सुख में भारत भारती की आराधना करते हुए प्रसन्न रहने का भाव इस राष्ट्र को सांस्कृतिक समन्वयक के साथ-साथ उत्सवधर्मी भी बनाता है। भारत उत्सव और उल्लास का राष्ट्र है, इसकी राष्ट्रीय गरिमा का कारक भी यहाँ की उत्सवधर्मी संस्कृति है और इसी उत्सवधर्मिता के चलते भारत ने अपने सांस्कृतिक वैभव की स्थापना की है। उत्सवों का अर्थ ही भारतीय संस्कृति है क्योंकि विभिन्न पर्वों और त्योहारों के माध्यम से जनभागीदारी और ईश्वरीय शक्ति के प्रति आभार के ज्ञापन की भारतीय परम्परा ने ही भारतीय संस्कृति को विभिन्नता में एकता की द्योतक और सर्वसमावेशी संस्कृति बनाया है। पुराने जमाने में भारतीय जीवन शैली के अनुसार मनोरंजन के साधन प्राय: कम ही थे। टीवी, मोबाइल जैसी व्यवस्था न होने के कारण भारतीय अपना मनोरंजन, खेलकूद, व्यायामशाला व चौपाल की चर्चाओं इत्यादि से ही कर पाते थे। इन्हीं मनोरंजन के न्यूनतम साधनों के बीच उल्लास को बनाए रखने में हिन्दी कविता का भी महनीय योगदान रहा है।

पहले के जमाने में ऐसे कालखण्ड में हिन्दी साहित्य और कविता ने जनता को साहित्य उत्सव, गोष्ठियों आदि के माध्यम से जोड़े रखा और लोगों का आपसी मेलमिलाप भी अनवरत रहा। इसी बीच कविता के गोष्ठी स्वरूप में परिवर्तन आया, जिसने कविता को मंचीयता का नाम दिया। कवि सम्मेलन से पहले कवि गोष्ठियाँ हुआ करती थीं, जहाँ कुछ कवि कमरे, बगीचे आदि में बैठ रचना-पाठ किया करते थे। समय के साथ कवि गोष्ठी व्यापक स्तर पर होने लगी, जिसमें पूरा गाँव या कहें आस-पास के गाँव के लोग भी श्रवण लाभ लेने ऐसे आयोजनों में आने लगे, जिसे कवि सम्मेलन कहा जाने लगा।

या यूँ कहें कि कविता के आनंद का जनसमर्थन, वाचिक परम्परा के माध्यम से कविता का गायन और उससे निर्मित उत्साह को कवि सम्मेलन नाम दिया गया।

हिन्दी कवि सम्मेलनों का समृद्ध इतिहास रहा है, इसने हिन्दी भाषा के सौंदर्य और प्रसार में अभिवृद्धि की है। जिस तरह से हिन्दी सिनेमा ने वैश्विक रूप से हिन्दी भाषा को आम जनमानस से जोड़ने और भारत की संस्कृति विरासत को समझने में अपना अमूल्य योगदान दिया है, उसी तरह हिन्दी कवि सम्मेलनों की भूमिका भी जनता को भाषा से और भाषा को भारतीयता से जोड़ने की रही

है।

कवि सम्मेलन के इतिहास की बात करें तो यह उत्तर प्रदेश के कानपुर से आरंभ होता है। भारत का पहला कवि सम्मेलन साल 1923 गयाप्रसाद 'सनेही' जी ने कानपुर में आयोजित करवाया था। इसमें 27 कवियों ने भाग लिया। इसके बाद कवि सम्मेलन की परंपरा देश-दुनिया में चल निकली। आज अमेरिका, कनाडा, दुबई जैसे लगभग ढाई दर्जन देशों में हिन्दी कवि सम्मेलन बड़े चाव से सुने जाते हैं। सनेही जी की अध्यक्षता में पूरे देश में सैकड़ों कवि सम्मेलन हुए। उनके संरक्षण में कवियों ने खुलकर मंच पर देश की आजादी के लिए योगदान दिया। जहाँ तक कवि गोष्ठियों की बात है तो वर्ष 1870 में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कविता वर्धनी संस्था बनाई। यही पहली कवि गोष्ठी कहलाई।

'सनेही जी' (1883-1972) उन्नाव के हड़हा के रहने वाले थे। वे हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के द्विवेदी युगीन साहित्यकार थे। वे उन्नाव टाउन स्कूल के प्रधानाध्यापक पद पर कार्यरत थे। 1921 में महात्मा गाँधी द्वारा असहयोग आंदोलन के आह्वान पर उन्होंने अध्यापकीय कार्य छोड़ दिया। वे आजादी की लड़ाई में कवि सम्मेलन के माध्यम से पूरी तरह से जुड़ गए। इससे पहले वे अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी जी के अनुरोध पर कानपुर आकर रहने लगे। इसके बाद उनका अधिकांश जीवन कानपुर में बीता। उनके साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' में भी कविताएँ लिखीं। नौकरी के दौरान उन्होंने त्रिशूल, तरंगी व अलमस्त के उपनामों से तमाम रचनाएँ लिखीं। उन्होंने अपना निजी प्रेस खोलकर काव्य संबंधी मासिक पत्र 'सुकवि' का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के सैकड़ों कवि दिए। उन्होंने कानपुर निवास के दौरान देश भर में सैकड़ों कवि सम्मेलनों की अध्यक्षता की। उनकी अध्यक्षता में कलकत्ता में हुए कवि सम्मेलन में रवींद्रनाथ टैगोर ने भी काव्यपाठ किया था।

कवि सम्मेलन की ऐतिहासिक यात्रा में पहले मानदेय या पारितोषिक तय करने की परंपरा नहीं थी। उस दौर में आयोजक द्वारा दिए गए बंद मुट्ठी में पत्र-पुष्प को कविगण सहर्ष स्वीकार कर लेते थे। मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', जय शंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', गिरिजाकुमार माथुर, सोहनलाल द्विवेदी, रमई काका, हरिवंश राय बच्चन जैसी विभूतियों ने इसी प्रकार काव्य पाठ किया। बताते हैं एक बार एक बड़े कवि ने अस्वस्थ होने के कारण कवि सम्मेलन में उपस्थित होने में असमर्थता जता दी। तब आयोजकों के दबाव डालने पर वह मनमर्जी के मानदेय पर उपस्थित होने पर सहमत हो गए, तब से मानदेय की परंपरा शुरू हो गई।

वैसे तो कवि सम्मेलनों का आयोजन प्राय: मनोरंजन के लिए किया जाता था, किन्तु उसी दौर में भारत अपनी आजादी के लिए भी संघर्षशील था, ऐसे कालखण्ड में कवियों से प्रेम, श्रृंगार अथवा चोली-दामन या रोली, पायल के गीत ही नहीं सुने जाते थे, उस दौर में कवियों ने अपने ओजधर्मा गीतों और कविताओं से राष्ट्र जागरण का कार्य भी किया। कविता की वाचिक परम्परा के प्रचलन में आने से हिन्दी कवि सम्मेलन भी उदयमान रहे। आजादी के नायकों ने कवि सम्मेलनों के माध्यम से भी राष्ट्र जागरण का कार्य किया, अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध भारतीयजनों को जागृत किया, अग्निधर्मा कवियों ने जनता में जोश और स्वाभिमान के मंत्र फूंके, उन राष्ट्रधर्मा गीतों और कविताओं से बच्चा-

बच्चा प्रभावित होने लगा।

भारत में, सन् 1947 में भारतीय स्वतंत्रता से लेकर सन् 1980 के दशक की शुरुआत तक की अवधि कवि सम्मेलन के लिए एक सुनहरा चरण था। 1980 के दशक के मध्य से 1990 के दशक के अंत तक, भारतीय आबादी और विशेष रूप से इसके युवा बेरोजगारी जैसे मुद्दों से पीड़ित थे। इसने कवि सम्मेलन पर अपना असर डाला, जैसा कि टेलीविजन और इंटरनेट जैसे मनोरंजन के नए तरीकों के साथ-साथ भारतीय सिनेमा रिलीज की मात्रा में भी हुआ। मात्रा और गुणवत्ता दोनों के मामले में कवि सम्मेलनों ने भारतीय संस्कृति में अपना स्थान खोना शुरू कर दिया था।

इसका मुख्य कारण यह था कि विभिन्न समस्याओं से घिरे युवा दोबारा कवि-सम्मेलन की ओर नहीं लौटे। साथ ही, उन दिनों भीड़ में जमने वाले उत्कृष्ट कवियों की कमी थी। लेकिन नई सहस्त्राब्दी के आरम्भ होते ही इंटरनेटयुगीन युवा पीढ़ी, जोकि अपना अधिकांश समय इंटरनेट पर गुजार देती है, वह कवि सम्मेलन को पसन्द करने लगी। इसी युग में काव्य को कई कवियों ने सहजता और सरलता से आम जनमानस की भाषा में लिखकर उसे किताबों से निकालकर मंचों पर सजा दिया।

2000 से लेकर 2010 तक का काल हिन्दी कवि सम्मेलन का दूसरा स्वर्णिम काल भी कहा जा सकता है। श्रोताओं की तेजी से बढ़ती हुई संख्या, गुणवत्ता वाले कवियों का आगमन और सबसे बढ़के, युवाओं का इस कला से वापस जुड़ना इस बात की पुष्टि करता है। पारम्परिक रूप से कवि सम्मेलन सामाजिक कार्यक्रमों, सरकारी कार्यक्रमों, निजी कार्यक्रमों और गिने-चुने कॉर्पोरेट उत्सवों तक सीमित थे। लेकिन इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शैक्षिक संस्थाओं में इसकी बढ़ती संख्या प्रभावित करने वाली है। जिन शैक्षिक संस्थाओं में कवि-सम्मेलन होते हैं, उनमें आईआईटी, आईआईएम, एन आई टी, विश्वविद्यालय, इंजीनियरिंग, मेडिकल, प्रबंधन और अन्य संस्थान शामिल हैं। उपरोक्त सूचनाएँ इस बात की तरफ इशारा करती हैं कि कवि सम्मेलनों का रूप बदल रहा है, परन्तु इसी दौर में साहित्यिक शुचिता का वो हश्र भी हुआ कि भारत की संस्कृति में एक हवा बाजारवादी और विज्ञापनवादी संस्कृति की भी घुस गई, जिसने स्ट्रीक को भोग्य समझा और उसी के साथ चुहल करने को साहित्य का नाम देकर काव्य से परिवारों को तोड़ दिया। 2010 से 2019 तक तो इसके स्तर में गजब का बदलाव आया। चुटुकुलेबाजों और द्विअर्थी संवाद करने वाले नोकझोंक करने वाले कवियों ने इस कवि सम्मेलन परम्परा को स्टैंडअप कॉमेडी या कहें परिवार के संग बैठ-सुनने का लायक भी नहीं छोड़ा। वैसे इसी दौर में सिनेमा और ओटीटी का भी दूषित रूप सबने देखा। माँ, बहन की गालियाँ तक ओटीटी के माध्यम से घुसने लग गईं। उसी तरह, कवि सम्मेलन भी भला कैसे अप्रभावित रह पाते! इसके बाद सन् 2020 से कोरोना वायरस ने विश्व को ही अपनी गिरफ्त में ले लिया तो प्रभाव स्वरूप विश्वबन्दी का दौर आ गया। भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में कवि सम्मेलन थमने लगे। लोगों की भीड़ जुटने पर पाबंदी होने से कवि सम्मेलनों में श्रोताओं की भीड़ की समस्या खड़ी हो गई। बावजूद इसके शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुनः शुचिता की बानगी देखी जा रही है।

कवि सम्मेलन के आरंभ से अब तक की सौ साला यात्रा में कवियों की श्रमसाध्य तपस्या ने

इस कवि सम्मेलन परम्परा को अक्षुण्ण बनाया और यहाँ तक कि उस परम्परा को देश ही नहीं अपितु विश्वभर में प्रसारित-प्रचारित भी किया।

कवि सम्मेलन को जनप्रिय बनाने में देश के बड़े हिन्दी कवियों का योगदान भी अतुलनीय रहा, जिनमें से कुछ आज हमारे बीच नहीं हैं, जैसे सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, पद्मभूषण-गोपाल दास नीरज, कैलाश गौतम, डॉ. उर्मिलेश, शैल चतुर्वेदी, प्रदीप चौबे, अल्हड़ बीकानेरी, ओम प्रकाश आदित्य, काका हाथरसी, निर्भय हाथरसी, बाल कवि बैरागी, हुल्लड़ मुरादाबादी, चन्द्रसेन विराट, डॉ. कुँअर बेचैन, माया गोविंद आदि और कुछ वर्तमान के कवि जैसे सत्यनारायण सत्तन गुरुजी, पद्मश्री सुरेंद्र शर्मा, पद्मश्री अशोक चक्रधर, डॉ. कुमार विश्वास, डॉ. हरिओम पंवार, डॉ. राजीव शर्मा, डॉ. गोविंद व्यास, संतोष आनंद, शैलेष लोढ़ा, डॉ. दिनेश रघुवंशी, डॉ. सरिता शर्मा, डॉ. कीर्ति काले, डॉ. सुमन दुबे, डॉ. शिव ओम अंबर, डॉ. विष्णु सक्सेना, पद्मश्री डॉ. सुरेंद्र दुबे, पद्मश्री डॉ. सुनील जोगी, शशिकान्त यादव, दिनेश दिग्गज, अशोक नागर, जगदीश सोलंकी, डॉ. प्रेरणा ठाकरे, चिराग़ जैन, बलवंत बल्लू, गजेंद्र सोलंकी, अतुल ज्वाला, डॉ. कविता 'किरण', अर्जुन सिसौदिया, अनामिका अम्बर, अशोक चारण, अंकिता सिंह सहित युवा पीढ़ी में शम्भू शिखर, चेतन चर्चित, अमन अक्षर, अमित शर्मा, राम भदावर, अमित मौलिक, गौरव साक्षी, कमल आग्नेय जैसे सैकड़ों कवि तक अपनी कविता के माध्यम से निरंतर शताब्दी को महोत्सवता प्रदान कर रहे हैं।

इसी कवि सम्मेलन परम्परा ने हिन्दी सिनेमा को ख्यात गीतकार दिए। हिन्दी के कवियों ने फिल्मी गीतकार के रूप में खूब ख्याति प्राप्ति की। कवि गोपाल दास नीरज, संतोष आनंद, प्रदीप, शैलेंद्र, विश्वेश्वर शर्मा, इंद्रजीत तुलसी, बालकवि बैरागी, माया गोविंद, प्रभा ठाकुर, वीनू महेंद्र, सुनील जोगी जैसे कई कवियों ने बॉलीवुड को गीत देकर समृद्ध बनाया। केपी सक्सेना ने फिल्म लगान, जोधा अकबर, हलचल, स्वदेश जैसी सुपरहिट फि ल्मों में संवाद लेखन का काम किया। डॉ. सुरेश अवस्थी ने डीडी वन, टू टीवी चैनलों में प्रसारित कई धारावाहिकों की पटकथा, संवाद व शीर्षक गीत लिखे। अशोक चक्रधर ने पानीपत जैसी ऐतिहासिक फिल्म में संवाद लिखे। यह भी हिन्दी कविता का अर्जित है, जिसमें कवियों की महनीय भूमिका रही है।

इस फिल्मी दुनिया में आज भी कई कवि अपने गीतों और संवाद के माध्यम से कविता की परंपरा को अक्षुण्ण रख रहे हैं। इसी तरह, हिन्दी कवि सम्मेलन ने विदेशों में भी अपना अस्तित्व बनाया। अमेरिका में हिन्दी साहित्य समिति द्वारा, इंग्लैंड में भारतीय संस्कृति परिषद् द्वारा, ऑस्ट्रेलिया, इस्ताम्बुल, बैंकॉक, कनाडा, मॉरीशस, केन्या, इंडोनेशिया, मलेशिया, दुबई जैसे तीन दर्जन देशों में हिन्दी कवि सम्मेलनों का आयोजन आज भी हो रहा है। यह हिन्दी कवि सम्मेलन का प्रभाव भी है कि इस बहाने विश्वभर में हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार हो रहा है। जिस तरह हिन्दी फिल्मों के माध्यम से भाषागत विस्तार की इमारत खड़ी हुई, उसी तरह कवि सम्मेलनों के माध्यम से गूगल हैड क्वाटर, सिलिकॉन वैली व फेसबुक मुख्यालय जैसे विश्व के दिग्गज संस्थानों में हिन्दी कविता का महोत्सव आयोजित किया जाता है। विश्व के पचास से अधिक विश्वविद्यालयों में कवि सम्मेलन इत्यादि आयोजित किए जाते हैं और भारत के कवि वहाँ जाकर हिन्दी कविता का पक्ष रखते हैं। आज हिन्दी

कवि सम्मेलन परम्परा अपने सौ साल के सफर के रोमांच से गर्वित है क्योंकि जनमानस के अवसाद को कम करने में भी कवि सम्मेलनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कोरोनो जैसी भीषण विभीषिका के दौरान ऑनलाइन कवि सम्मेलनों ने लाखों लोगों को अवसादग्रस्त होने से बचाया, यह भी सामर्थ्य हिन्दी कविता में रहा, यह दुनिया ने देखा। और निश्चित तौर पर हिन्दी शब्द संसार की इस ताकत से समाज बखूबी परिचित है। हिन्दी कवि सम्मेलन इस वर्ष अपने यशस्वी शताब्दी वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस शताब्दी वर्ष को जनमानस में स्थापित करने के लिए कवि सम्मेलन समिति सहित मातृभाषा उन्नयन संस्थान इत्यादि भी प्रयासरत है। विभिन्न साहित्य अकादमियों के साथ मिलकर नगर-नगर कविता का उत्सव होगा। कवियों के दीवान का वितरण, भाषण, व्याख्यान, काव्य उत्सव, कवि सम्मेलन इत्यादि आयोजित किए जाएँगे ताकि देश और दुनिया के लोग इस शताब्दी वर्ष के साक्षी बने। हिन्दी कवि सम्मेलन की यह दिग्विजय यात्रा अनंत तक अनवरत जारी रहे और जनमानस भी कविता के लिए विनीतभाव से कार्यरत रहे। श्रोताओं को उनकी मानसिक खुराक मिलती रहे।

कवि सम्मेलन शताब्दी वर्ष के दौरान मातृभाषा उन्नयन संस्थान देश के प्रत्येक राज्य में कविता का उत्सव और सम्मान समारोह आयोजित करेगा, जिससे भी जनता में कवि सम्मेलन के प्रति जागरुकता बढ़ेगी और कवि सम्मेलनों में भी शुचिता लौटेगी। इस समय यह कालखण्ड पीढ़ियों तक अमर रहे, इस दिशा में भी सैकड़ों कार्य किए जा रहे हैं। देश के हजारों विद्यालय, महाविद्यालय, साहित्यिक संस्थाएँ, कवि सम्मेलनों के आयोजक के साथ जुड़कर हिन्दी कवि सम्मेलन का शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा हैं। यह अभूतपूर्व कार्य जब देशभर में होता दिखाई देगा, तब यकीन जानना हिन्दी कवियों के असाध्य श्रमबल का सुखद परिणाम होगा और इसी तरह हिन्दी कवि सम्मेलन की अनंत यात्रा भी यश अर्जित करेगी।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)
मो. 9893877455 / 9406653005

कमल किशोर गोयनका

श्री गुरु गोलवलकर का भाषा-चिंतन

बीसवीं शताब्दी में जिन राष्ट्र-पुरुषों, मनीषियों एवं चिंतकों ने भारत के समग्र विकास एवं उसे शक्तिपुंज बनाने के लिए जो विचार-दर्शन दिए उनमें महात्मा गाँधी के बाद 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के दूसरे सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है। वे पूरे भारत में श्रीगुरु जी के रूप में विख्यात थे तथा स्वयंसेवकों के लिए तो परम पूजनीय गुरुजी थे। आज हम समझ सकते हैं कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के संस्थापक परम पूजनीय डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार में उन्हें क्यों अपने बाद सरसंघचालक बनाया। श्रीगुरु जी में देशभक्ति की भावनाएँ जन्मजात संस्कार थे, वे सेवा के अप्रतिम मूर्ति थे, उनके पास हिंदू राष्ट्र, संस्कृति एवं परंपरा की संकल्पना थी तथा हिंदू समाज की एकात्मता एवं संगठन तथा उसके समग्र विकास के लिए पूर्णतः तर्कसंगत विचार-दर्शन था। इस विचार-दर्शन के अनुसार भारत हिंदू राष्ट्र था, और है तथा हिंदू समाज की एकता है, और यह इसकी अखंडता एवं अटूटता की रक्षा का एकमात्र आधार है। उनके राष्ट्र-दर्शन का आधार राष्ट्रीयता थी, राष्ट्र का हित-अहित था तथा इसके लिए विशाल हिंदू समाज से राष्ट्र-प्रेमी हिंदू युवकों को संस्कारवान, कर्मशील, सेवामान एवं भारत माता के लिए समर्पित बनाने का महत् राष्ट्रीय कार्य था। इस कार्य के लिए उनकी पद्धति नियमित संघ शाखा में जाने के साथ हिंदू समाज को जागृत करने तथा पूरे राष्ट्र के साथ सामरस्य उत्पन्न करने की थी। इसके लिए वे वाणी और कर्म में एकता चाहते थे, जिससे कार्य को सजीव रूप देकर जीवन की पद्धति को उचित दिशा में मोड़ा जा सके। श्रीगुरु जी ने कोझीकोड़ के प्रांतीय शिविर में फरवरी, 1966 में कहा था, 'हमारे कार्य में कोरी बातों का कोई स्थान नहीं। भाषणों में हमारी रुचि नहीं, लगातार बोलने रहने में हमारा विश्वास नहीं, शब्दों का जाल खड़े करना हमें भाता नहीं, फिर भी बोलना तो पड़ता ही है पर हम निश्चयपूर्वक बोलते हैं और जो बोलते हैं उसे अपने कार्य द्वारा सजीव रूप देते हैं। अपने कार्य द्वारा जीवन की पद्धति में मोड़ लाते हैं।'

इस प्रकार श्रीगुरु जी का पूरा बल अपने कार्य एवं कार्य-पद्धति पर है, जिसके द्वारा व्यक्ति, समाज तथा पूरे राष्ट्र को संस्कारित एवं प्रभावित करते हैं। राष्ट्र-जीवन का संपूर्ण क्षितिज उनके दृष्टि-पथ एवं विचार-पथ में है तथा स्थितियों एवं प्रसंग तो तत्काल उनका ध्यान आकर्षित करते हैं जो देश की हिंदू चेतना तथा राष्ट्रीयता के लिए उपयोगी है तथा जो उसे आहत करने पर तुले हुए हैं। श्रीगुरु जी के सम्मुख भाषा और साहित्य की स्थिति ऐसी ही है। देश में जब भी भाषा-समस्या उत्पन्न हुई तथा भाषा-आंदोलन हुए तथा भाषावार प्रांतों की स्थापना का प्रश्न उपस्थित हुआ तथा कुछ साहित्यिक कृतियों से उनका सामना हुआ तो निर्णय एवं मूल्यांकन की कसौटी राष्ट्र की एकता और अखंडता सर्वोपरि है एवं देश की संस्कृति तथा परंपरा पर कोई भी आघात असहनीय है। श्रीगुरु जी ने माना कि वे न तो भाषाविद् हैं और न साहित्यकार, लेकिन इसके बावजूद वे साहित्य के अध्येता तथा सहृदय पाठक थे तथा देश की भाषा-समस्या को उन्होंने गहराई से समझा था। जहाँ तक साहित्य का संबंध है, उनका अंग्रेजी, संस्कृत, हिंदी, मराठी आदि भाषाओं के साहित्य से गहरा परिचय था। श्रीगुरु जी ने अपने वक्तव्यों में शेक्सपीयर के

'मैकबैथ', 'जुलियस सीजर' तथा अमेरिकन उपन्यास 'अंकल टाम्स केबिन' की चर्चा की है। संस्कृत में वेद, उपनिषदों के साथ कालिदास के 'रघुवंश' आदि कृतियों, संत कवियों में तुलसीदास, कबीरदास, मीरा, रामानंद, चैतन्य महाप्रभु आदि तथा मराठी कवि समर्थ रामदास आदि का कई बार उल्लेख करते हैं। बंगला साहित्यकारों में रवींद्रनाथ टैगोर, बंकिमचंद्र तथा सुप्रसिद्ध नाटककार गिरीशचंद्र घोष आदि की साहित्यिक प्रवृत्ति की चर्चा करते हैं। हिंदी की पत्रिका 'सरस्वती तो वे नियमित पढ़ते थे और निराला की प्रसिद्ध कविता 'वीणावादिनी वर दे' का भी उल्लेख करते हैं। गुरुजी ने संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी तथा मराठी की कुछ पुस्तकों की समीक्षा तथा प्रस्तावना भी लिखी थी। श्यामनारायण पांडे की काव्यकृति 'छत्रपति शिवाजी' की भूमिका उन्होंने ही लिखी थी और कवि की बड़ी प्रशंसा की थी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पुस्तक 'पॉलिटिकल डायरी' का विमोचन तो उसके हाथों ही हुआ था। बंकिम के प्रसिद्ध गीत 'वंदे मातरम्' की प्रशंसा में उन्होंने कहा कि इसमें राष्ट्र-जीवन की सभी भावनाएँ प्रकट हुई हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की कुछ स्थापनाओं से असहमत होते हुए ऐसे विद्वानों की राजभक्ति पर गहरी टिप्पणी की। श्रीगुरु जी का निष्कर्ष था कि पुस्तक में इतिहास में घटित हुई के साथ अघटित का भी वर्णन किया गया है तथा आर्य-द्रविड़ संघर्ष की कल्पना भी सत्य नहीं है। इसे वे 'विचित्र इतिहास' कहते हैं तथा लिखते हैं कि वर्तमान नेताओं को ऐसा ही कुछ चाहिए, इसलिए ऐसे विद्वानों को मान-सम्मान भी खूब मिलता है। मान सम्मान के लोभ में अच्छे-अच्छे लोग काम करने को प्रवृत्त होते हैं।

श्रीगुरु जी के साहित्य-चिंतन के ये ही कुछ बिंदु हैं। यद्यपि इस साहित्यिक-दृष्टि में बहुत विस्तार नहीं है, किंतु जो भी अंश है, वह संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठता एवं महत्ता की स्थापना के साथ यदा-कदा हिंदी साहित्य का राष्ट्रीयता और भारतीयता की दृष्टि से मूल्यांकन भी करते हैं। साहित्य की अपेक्षा भाषा का प्रश्न श्रीगुरु जी को अधिक आकर्षित करता है, क्योंकि देश की भाषा-समस्या एवं भाषा-आंदोलन एकता और अखंडता के लिए चुनौती बनते जा रहे थे। वे देश की अखंडता के लिए किसी भी आने वाले संकट पर तुरंत अपना पक्ष रखते हैं और उसके लिए प्रबल तर्क देते हैं। यह सर्वविदित है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने, अंग्रेजी को बनाए रखने तथा भाषावार प्रांतों की रचना आदि को लेकर देश के विभिन्न भागों में तीव्र आंदोलन हुआ जिस पर गुरुजी ने गहराई से विचार किया और 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' का भाषा-दर्शन प्रस्तुत किया। इस भाषा-दर्शन में संस्कृत भाषा पर उनके विचार राष्ट्रीय महत्त्व के हैं। वे मानते हैं कि संस्कृत देववाणी है, उसमें भारतीय जीवन के आधारभूत ज्ञान का मूल रूप विद्यमान है, भारत की आंतरिक एकता की अभिव्यक्ति करती है, वह सर्वप्राकृत भाषाओं की जननी एवं पोषण करती है तथा उसका अध्ययन महान राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति करने वाला है। श्रीगुरु जी के अनुसार संस्कृत 'सर्वोत्तम भाषा' है, राष्ट्रीय एकता के लिए उसकी शिक्षा अनिवार्य है। प्राचीन समय में संस्कृत भाषा ही सार्वदेशिक व राजकीय व्यवहार की भाषा थी, परंतु संस्कृत से प्राकृत तथा अन्य भाषाओं का जन्म हुआ तो संस्कृत की कन्या हिंदी ने उसका स्थान ग्रहण किया। रोहतक के 'हरियाणा प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' में 2 मार्च, 1950 को अपने व्याख्यान में कहा था, 'इस देश की सभी भाषाएँ हमारी हैं, हमारे राष्ट्र की हैं। पूर्व काल में जब हमारा देश स्वतंत्र था, तब यहाँ का सब व्यवहार संस्कृत में ही होता था। धीरे-धीरे संस्कृत की जगह प्राकृत ने ली तब उसी संस्कृत भाषा से प्रांतीय भाषाओं के रूप में अनेक भाषाओं का

उद्भव हुआ। सभी प्रांतीय भाषाएँ संस्कृत की कन्या होने के कारण सभी में परस्पर समानता है- सभी समान प्रेम और आदर की पात्र हैं। उनमें छोटे- बड़े का सवाल ही पैदा नहीं होता।'

श्रीगुरु जी का यह विचारांश महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें उन्होंने संस्कृत, हिंदी तथा प्रांतीय भाषाओं के उद्भव एवं विकास तथा उनकी महत्ता को रेखांकित कर दिया है। उन्होंने हिंदी भाषा के अनेक गुणों का उल्लेख अपने कई व्याख्यानों में किया है। वे मानते हैं कि संस्कृत से जन्मी हिंदी संस्कृत के बाद सार्वदेशिक भाषा है तथा उसे प्रखर स्वाभिमान की भावना को जागृत करने वाली जगत की सर्वश्रेष्ठ भाषा बनाना है। हिंदी ही इस देश की राजभाषा या राज्य-व्यवहार की भाषा बन सकती है, क्योंकि वह देश में अधिकतर समझी जाती है और दक्षिण में भी वह थोड़ी मात्रा में समझी जाती है। अत: हिंदी भाषा को हम सबको मिलकर व्यवहार भाषा के रूप में समृद्ध पर करना चाहिए। श्रीगुरु जी मराठी भाषी थे, लेकिन उन्हें हिंदी भी अपनी मातृभाषा ही प्रतीत होती थी। उन्होंने दिल्ली में फरवरी, 1965 में कहा था, 'हिंदी को स्वीकार करने में कौन-सी कठिनाई है। मैं तो मराठी भाषी हूँ, पर मुझे हिंदी पराई भाषा नहीं लगती। हिंदी मेरे अंत:करण में उसी धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता का स्पंदन उत्पन्न करती है जिसका मेरी मातृभाषा मराठी के द्वारा होता है।' श्रीगुरु जी इस प्रकार मराठी और हिंदी को समान प्रेम और आदर देते हैं, परंतु वे हिंदी को एकमात्र राष्ट्रीय भाषा मानने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं, 'मैं मानता हूँ कि अपनी सभी भाषाएँ राष्ट्रीय हैं। ये हमारी राष्ट्रीय धरोहर हैं। हिंदी भी उन्हीं में से एक है, परंतु उसके बोलने वालों की संख्या अधिक होने से उसे राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। यह दृष्टिकोण कि हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा है और अन्य भाषाएँ प्रांतीय हैं, वास्तविकता के विपरीत और गलत है।' अत: सभी भाषाएँ जो हमारी संस्कृति के विचारों का वहन करती हैं, शत-प्रतिशत राष्ट्रीय हैं। इस प्रकार श्रीगुरु जी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाएँ मानकर छोटी-बड़ी भाषा के अहंकार को समाप्त करके श्रेष्ठता के उन्माद एवं हीनता-ग्रंथि को भी नष्ट करते हैं। इसलिए वे हिंदी को अन्य देशी भाषाओं की तुलना में श्रेष्ठ नहीं मानते। वे कहते हैं कि तमिल तो ढाई हजार वर्षों से एक सुसंस्कृत भाषा के रूप में प्रचलित थी। अत: हिंदी अन्य प्रादेशिक देशों की तुलना में न तो पुरानी है और न ही श्रेष्ठ है, परंतु राष्ट्रीय एकता, संस्कृति की संवाहिका, स्वत्व-बोधक, आत्मसम्मान की रक्षक तथा सार्वदेशिक होने के कारण हिंदी के वैशिष्ट्य को स्वीकार करते हैं और उसे ही राजभाषा तथा प्रांतों से संपर्क एवं व्यवहार की भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं।

श्रीगुरु जी हिंदी तथा अन्य देशी भाषाओं को उनका उचित एवं संवैधानिक अधिकार देने के प्रबल समर्थक थे। इस कार्य में जो सबसे बड़ी बाधा है विदेशी भाषा अंग्रेजी का वर्चस्व तथा अंग्रेजी भक्त भारतीयों की पराधीन मानसिकता। स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी के वर्चस्व तथा एकाधिकार को देखकर श्रीगुरु जी व्यथित होकर कहते थे की समस्त भारत को एकात्मता के अनुभव तथा पारस्परिक व्यवहार हेतु विदेशी भाषा पर निर्भर रहना लज्जास्पद है, राष्ट्राभिमान का अपमान है। यह स्थिति की दयनीयता है कि अंग्रेजी प्रमुख भाषा बन बैठी है और हमारी सब भाषाएँ गौण बनी हैं। इसे बदलना होगा। यदि हम समझते हैं कि हम स्वतंत्र राष्ट्र हैं तो हमें अंग्रेजी के स्थान पर स्वभाषा लानी होगी। वे अंग्रेजी को स्वीकार कर लेने के दुष्परिणामों का विवेचन करते हुए कहते हैं, यदि हमने अंग्रेजी स्वीकार की तो अंग्रेजी बोलने वाले विदेशियों की जीवन-पद्धति हमारे ऊपर न चाहते हुए भी बलात्कार थोपी जाएगी। हजारों वर्षों से हमारी संस्कृति अनेक झंझावातों को झेलते हुए अखंड रूप से चली आ रही है। उसका एकमेव कारण यही है कि हमने अपने स्वत्व को अभिव्यक्त

करने वाली भाषाओं को कभी छोड़ा नहीं। हमने इस ज्ञान का कभी भी विस्मरण नहीं होने दिया कि संपूर्ण देश में एक ही धर्म और संस्कृति की परंपरा चल रही है। इसी कारण परकीय आक्रमणकारी हमारे राष्ट्र को नष्ट नहीं कर पाए, किंतु यदि आज हमने अपने भारत की किसी भाषा को अपनाने के स्थान पर किसी विदेशी भाषा को ही शासन एवं जीवन का विकास संपूर्ण करने का अधिकार प्रदान किया तो उस भाषा के पीछे छिपे परकीय विचार हमारे जीवन पर छा जाएँगे। इस प्रकार हम अपने संपूर्ण राष्ट्र का विनाश कर डालेंगे। श्रीगुरु जी की आशंका सत्य ही थी। अंग्रेजी के नाम पर देश की युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति तथा जीवन-पद्धति से कटती जा रही है। आज देश के लाखों छात्र प्राथमिक कक्षा से ही अंग्रेजी पढ़ते हैं और अंग्रेजी रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान आदि को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और इस तरह देश की सांस्कृतिक गरिमा से दूर होते जा रहे हैं। श्रीगुरु जी के अनुसार भारत में अंग्रेजी भाषा और संस्कृति को थोपने का अंग्रेजों का यह सोचा-समझा प्रयास था जो हमें अपने सांस्कृतिक जीवन से तोड़ने के लिए किया गया था। श्रीगुरु जी पराधीन और स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी की स्थिति का मूल्यांकन करते थे और पाते थे कि अंग्रेजी शासन और आज के प्रशासन में कोई अंतर नहीं है। केवल सत्ताधारी वाले लोग बदल गए हैं, अन्यथा अंग्रेजी वैसी ही प्रचलित है। कथाकार प्रेमचंद ने 'आहुति' कहानी में कहा था कि हमें ऐसा स्वराज नहीं चाहिए जिसमें जॉन की जगह गोविंद को बैठा दिया जाए। श्रीगुरु जी प्रेमचंद की इस आशंका को सत्य रूप में पाते हैं, इसलिए वे कहते थे कि अंग्रेजी के रहते कैसे लोगों में राष्ट्रभक्ति की भावना उत्पन्न हो सकती है? अत: वे स्पष्ट कहते थे कि सबसे पहले अंग्रेजी को जाना चाहिए। जो भी देश अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुए सभी ने अपनी देश की भाषाओं को ग्रहण किया।

स्वतंत्र भारत में वैसे भी अंग्रेजों के जाने के बाद उसके प्रेरक कारण भी चले गए थे। वे दिल्ली में फरवरी, 1965 में दिए वक्तव्य में कहते हैं, 'अंग्रेजों के साथ ही अंग्रेजी को भी चले जाना चाहिए था। आवश्यकतानुसार अंतरराष्ट्रीय कार्य करने वालों का अंग्रेजी सीखना समझ में आ सकता है, लेकिन देश के प्रत्येक बालक-बालिका के ऊपर उसका बोस डालना कहाँ तक उचित है? जिसे अपने राष्ट्र का स्वाभिमान है, वह किसी भी परिस्थिति में पराई भाषा का अभिमान लेकर नहीं चल सकता।' अत: अंग्रेजी को जाना होगा, क्योंकि वह हमारी जीवनी-शक्ति को क्षीण करती है तथा हमारी भाषाओं की शत्रु है। यदि कुछ उपद्रवी लोग अंग्रेजी भाषा को लादने के लिए आंदोलन करते हैं तथा सरकार उनके दबाव में संविधान में संशोधन करती है तो श्रीगुरु जी ऐसे व्यक्तियों को सावधान करते थे कि ऐसा करने पर शेष देश के लोग अंग्रेजी को लादना स्वीकार नहीं करेंगे और वे भारतीय राष्ट्रीयता एवं संविधान की रक्षा के लिए आंदोलन करेंगे।

श्रीगुरु जी हिंदी-अंग्रेजी के संबंधों के साथ हिंदी-उर्दू के परस्पर संबंधों के साथ उर्दू के संबंध में कुछ मूलभूत प्रश्नों का भी उत्तर देते हैं। वह कहते थे कि हिंदी को संपर्क भाषा मानने के बाद उसे सरल बनाने के नाम पर उसका उर्दूकरण करना सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक तुष्टीकरण के समान है। हिंदी का उर्दूकरण करने वाले तथा राजभाषा हिंदी की अंग्रेजी से बराबरी करने वाले लोग हमारी उत्कट राष्ट्रीय प्रकृति की जड़ें खोदना चाहते हैं। अत: राष्ट्रीय एकात्मता के लिए इन दोषपूर्ण भाषा नीतियों को अविलंब त्याग देना चाहिए। वे मानते हैं कि उर्दू ने ही देश का विभाजन किया। अत: जो लोग उत्तर प्रदेश तथा कुछ अन्य राज्यों में उर्दू को हिंदी की बराबरी का स्थान देने की माँग कर रहे हैं, वह वास्तव में एक प्रकार से दूसरे विभाजन की नींव डाल रहे हैं। श्रीगुरु जी सिद्ध करते हैं कि उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है। वे कहते

हैं, 'जिसकी अपनी लिपि हो, अपने क्रियापद हों, जिनके द्वारा मन के विचारों को वाक्य रूप में प्रकट किया जा सके, उसे भाषा कहते हैं, परंतु उर्दू की लिपि तो फारसी है, व क्रियापद हिंदी से लिए गए हैं। फारसी-अरबी का सम्मिश्रण कर संकर बोली के रूप में ही वह है। स्वतंत्र भाषा के रूप में उसका विकास नहीं हुआ।' वह इस धारणा का भी खंडन करते हैं कि उर्दू इस्लाम की भाषा है। श्रीगुरु जी कहते हैं, 'यह भी नहीं माना जा सकता कि वह इस्लाम की भाषा है। इस्लाम का धर्म-ग्रंथ 'कुरान शरीफ' अरबी भाषा में है तथा इस्लाम के अनुयायी जहाँ-जहाँ बसते हैं, उर्दू वहाँ-वहाँ की भाषा भी नहीं है। उर्दू वास्तव में मुसलमानों की धर्म भाषा नहीं है। मुगलों के समय में एक संकर भाषा के रूप में उत्पन्न हुई। इस्लाम के साथ उसका रत्ती-भर का संबंध नहीं है। मुसलमानों की अगर कोई धर्म-भाषा हो वह अरबी ही होगी।' अत: वे स्पष्ट करते हैं कि उर्दू भाषा को राज-मान्यता का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि वह अलगाव और फूट की भाषा है तथा उसके द्वारा मुसलमानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरना देशहित के विरुद्ध है। इस पर भी श्रीगुरु जी उर्दू के स्वभाविक एवं रूढ़िगत शब्दों के प्रयोग के विरुद्ध नहीं हैं। उनका विरोध सुनियोजित ढंग से हिंदी में अरबी-फारसी शब्दों को लादने से है। हिंदी का सरलीकरण करने के नाम पर उसका उर्दूकरण उसे भ्रष्ट और अबोधगम्य ही बनाएगा। श्रीगुरु जी ने हिंदी भाषा के स्वरूप, हिंदी साम्राज्यवाद की मिथ्या कल्पना तथा भाषावार प्रांतों की रचना पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया और संघ का मंतव्य प्रस्तुत किया। श्रीगुरु जी हिंदी, अरबी, फारसीकरण के विरुद्ध थे, परंतु वे हिंदी को संस्कृतनिष्ट और संस्कृतिजन्य रूप में चाहते थे, क्योंकि संस्कृतनिष्ट होने पर वह सभी के लिए सहज-सरल होगी, किंतु अरबी-फारसी मिश्रित भाषा विंध्याचल के नीचे कोई नहीं समझेगा। गाँधी और प्रेमचंद ने उत्तर प्रदेश के मुसलमानों को ध्यान में रखकर उर्दू को राष्ट्रीय भाषा माना, लेकिन उन्होंने इस पर विचार नहीं किया कि दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम भाषी लोग तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी के साथ ही जुड़ सकते हैं। यह श्रीगुरु जी समझते थे, इस कारण वे संस्कृतनिष्ठ हिंदी चाहते थे, क्योंकि ऐसी हिंदी देश की सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है तथा इससे ही अपनी संस्कृति को जीवित रखा जा सकता है।

श्रीगुरु जी मैं दक्षिण भारत तथा पंजाब के हिंदी विरोधी आंदोलनों को देखा-समझा था तथा उनके नेताओं से भी उनकी बातचीत हुई थी। दक्षिण भारत के हिंदी विरोधी आंदोलन में हिंदी साम्राज्यवाद का आरोप लगाया गया था जिसका श्रीगुरु जी ने कई बार खंडन किया। उन्होंने कहा कि यह स्वार्थी राजनीतिज्ञों की मिथ्या कल्पना है कि हिंदी साम्राज्यवाद या उत्तर का शासन होने जा रहा है। श्रीगुरु जी ने 'भाषागत कटुता' तथा 'काल्पनिक भय' की संज्ञा देते हुए अपने व्याख्यान में कहा यह कटुता एक प्रकार से भाषा के साम्राज्यवाद के काल्पनिक भय की उपज है। मेरे विचार में अंग्रेजी शासन-काल मंत भी बंगला, मराठी एवं गुजराती में असाधारण प्रकृति की तथा उच्च स्तर की रचनाओं का निर्माण करने में भाषाएँ सफल सिद्ध हुईं, जिनकी भूरी-भूरी प्रशंसा विश्व के महान साहित्यकों ने भी की है। अब हमें इस प्रकार का भय मानने की भी आवश्यकता नहीं कि प्रांतीय भाषा के अधिकारों पर किसी प्रकार का अतिक्रमण होने जा रहा है। इस बात को कोई भी नहीं चाहेगा कि ये सारी भाषाएँ, जिन्होंने सदियों तक हमारे विचारों को इतनी सुयोग ढंग से अभिव्यक्त किया है, नष्ट हों और उनमें से कोई एक देसी भाषा जीवित रहे। फिर भी राष्ट्रभाषा के रूप में केवल उस एक भाषा को उपयोग में लाया जाए जो कि सर्वसाधारण जन के लिए विचारों के आदान-प्रदान

की दृष्टि से सुगम हो जिसे 'हिंदी' कहते हैं। इन विचारों में इतनी स्पष्टता और ईमानदारी है कि हिंदी पर लगाए गए सभी आरोप मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं। श्रीगुरु जी इस भाषागत कटुता एवं उलझन का कारण भी स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि देश की अन्यान्य भाषाओं को हिंदी के समान राष्ट्रीय भाषा न मानने के कारण ऐसा हुआ है। अत: वे मानते हैं कि वस्तुत: हमारी सभी भाषाएँ, चाहे वह तमिल हो या बांग्ला, मराठी हो या पंजाबी, हमारी राष्ट्रभाषाएँ हैं। सभी भाषाएँ और उपभाषाएँ खिले हुए पुष्पों के समान हैं, जिनसे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की वही सुरभि प्रवाहित होती है। श्रीगुरु जी एक अन्य स्थान पर भारत की विविध भाषाओं की तुलना इंद्रधनुष के दैदीप्यमान विविध रंगों से करते हैं तथा उनकी आंतरिक एकता को इंद्रधनुष के परिधानों को जन्म देने वाली सूर्य की किरण के समान बताते हैं। अत: सभी भारतीय भाषाएँ समान श्रद्धा की पात्र हैं। हिंदी भाषा की प्रगति होगी तो ये प्रांतीय भाषाएँ भी फलेंगी-फूलेंगी और साथ-ही-साथ हिंदी को भी समृद्ध करेंगी।

भारतीय स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस सरकार ने भाषावार प्रांतों का गठन किया। गाँधी भी इसी पक्ष में थे। श्रीगुरु जी का मत था कि भारत हिंदू राष्ट्र है और उसकी अखंडता के लिए जाति, पंथ, भाषा तथा प्रांत-भेद अमान्य है। इस पर भी वे भाषानुसार प्रांतों की रचना की दो कसौटियों का उल्लेख करते हैं- शासन की सुविधा तथा खर्च में बचत। यदि ये दोनों उद्देश्य सिद्ध होते हैं तो उन्हें भाषावार प्रांतों की रचना में तनिक भी आपत्ति न थी। हिंदी विरोधी आंदोलनों तथा भाषावार प्रांतों के निर्माण के मूल में यह कारण न थे, बल्कि भाषा-भक्ति के नाम पर राजनेताओं को संघर्षरत रहने तथा अन्य भाषाओं पर कीचड़ उछालने का अवसर मिल गया था। भाषा एवं प्रांत-रचना के प्रश्न पर देश में उग्र प्रदर्शन हुए जिनमें साम्यवादियों का बड़ा हाथ था। दक्षिण के प्रसिद्ध नेता सी. राजगोपालाचारी तो भाषा के आधार पर देश को उत्तर एवं दक्षिण दो भागों में विभाजित तक करने की घोषणा करने लगे। श्रीगुरु जी इस देशभक्ति और मातृभक्ति के निरादर से बहुत व्यथित थे। देश के दुबारा विभाजन के इस प्रस्ताव में देशद्रोहिता तथा स्वार्थपरता विद्यमान थी। इसी कारण ऐसे नेता देश को खंडित करने वाले भाषा-आंदोलनों को प्रोत्साहित करते रहे। पंजाब के भाषा-आंदोलन एवं पंजाबी सूबे की माँग को इसी कारण समर्थन नहीं दे सके, क्योंकि किसी भाषा को संप्रदाय के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। अत: पंजाबी भाषा और सिखों का समीकरण अवास्तविक तथा अनावश्यक है। इसलिए पंजाबी सूबे की माँग घातक मनोवृति की अभिव्यक्ति है, जिसका समर्थन नहीं किया जा सकता। यह राष्ट्र की अखंडता के लिए घातक है, उसका आधार राजनीति और पृथकतावाद है एवं सिक्ख संप्रदाय के सच्चे धार्मिक स्वरूप को नष्ट करने वाला है। श्रीगुरु जी मानते हैं कि पंजाबी हमारी अपनी भाषा है। उसका अभिमान होना चाहिए, न कि उपहास, किंतु यह सिर्फ केशधारियों अथवा नानकपंथियों की भाषा नहीं है तथा 'गुरु ग्रंथ साहब' की भाषा भी केवल पंजाबी नहीं है। उसमें अनेक भाषाएँ मिलती है। अत: पंजाबी भाषा को अकाली दल तक सीमित कर देना तथा सिखों के लिए पंजाबी सूबा बनाना दोनों ही न्यायसंगत नहीं है। श्रीगुरु जी इसी कारण आपसी द्वेष तथा देश के टुकड़े होने की संभावना को देखकर पंजाबी सुबह का समर्थन नहीं करते। उन्होंने 15फरवरी, 1950 को कानपुर में कहा था, 'मैं भाषानुसार प्रांतों की रचना के विरुद्ध नहीं हूँ, किंतु मद्रास के विरुद्ध आंध्र, असम के विरुद्ध बंगाल हो, इस बात के विरुद्ध अवश्य ही हूँ। सुविधा के लिए भाषा के आधार पर प्रांत बनाना पृथक बात है और उसके लिए जिद करते हुए दूसरे का रक्त बहाने को तैयार हो जाना दूसरी बात है। अपनी भाषा- चिंतन में

श्रीगुरु जी ने लिपि के प्रश्न पर भी अपना मत प्रस्तुत किया। लिपि के संबंध में श्रीगुरु जी कोई विवाद उत्पन्न करने के पक्ष में न थे, पर वे यह मानते थे कि नागरी लिपि एक पूर्ण लिपि है और हिंदी के लिए यही राष्ट्र-लिपि होनी चाहिए। वे तो इस पक्ष में भी थे कि देश की सभी प्रांतीय भाषाएँ नागरी लिपि का समान रूप से उपयोग करें, लेकिन इसका निर्णय इन भाषाओं को बोलने वाली जनता ही करें।

श्रीगुरु जी के इस साहित्य एवं भाषा-दर्शन के विवेचन से कुछ निष्कर्ष सामने आते हैं। एक तो यह कि साहित्य की अपेक्षा भाषा पर श्रीगुरु जी ने अधिक व्यापकता से विचार किया है। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का पर्याप्त अध्ययन किया है, लेकिन जहाँ देश की संस्कृति, धर्म एवं परंपरा की अनुकूलता मिलती है, उसकी वे प्रशंसा करते हैं और जहाँ इन पर आघात लगता है या विकृत करने की कोशिश होती है, वहाँ वे बड़े भद्र शब्दों में उसकी आलोचना करते हैं। भाषा-विवाद और भाषा-आंदोलन तथा भाषावार प्रांतों की रचना उन्हें अधिक आहत एवं उद्विग्न करती है, क्योंकि वह देश की एकता, अखंडता और राष्ट्रीयता के लिए संकट उपस्थित करते हैं। श्रीगुरु जी के लिए हिंदू धर्म, संस्कृति के साथ देश की एकता, अखंडता तथा देश-भक्ति सर्वोपरि महत्त्व रखती है और जब-जब विधर्मी तथा देश के शत्रु उन्हें नष्ट करना चाहते हैं तो उनका देश-प्रेमी मन तत्काल उनकी रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाता है। श्रीगुरु जी इसी कारण भाषा-समस्या का निदान देश की संस्कृति एवं परंपरा में ढूँढ़ते हैं और संस्कृत, प्राकृत, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की समानता में अपना हल प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने संस्कृत के बाद हिंदी को राजभाषा एवं संपर्क भाषा बनाकर तथा हिंदी एवं अन्य सभी विदेशी भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाएँ घोषित करके तथा देवनागरी लिपि को सर्वमान्य लिपि मानकर जो समाधान दिया है, वह सर्वथा तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक है। श्रीगुरु जी हिंदी के उर्दूकरण तथा अंग्रेजी को स्थायी बनाने के विरोधी थे। ये दोनों ही भाषाएँ फूट, मतभेद तथा विभाजनकारी हैं तथा भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं से इनका कोई संबंध नहीं है। गांधी, नेहरू जैसे राजनेताओं ने उर्दू को विशेष स्थान देकर तुष्टीकरण एवं सांप्रदायिकता का परिचय दिया, यह देखकर भी कि उर्दू ने ही देश का विभाजन कराया था। श्रीगुरु जी के विचार कि उर्दू भाषा नहीं है, भाषा-शास्त्र द्वारा भी प्रमाणित है। अत: उनके विचारों का आधार राष्ट्रीयता, भाषा परंपरा तथा भाषा-शास्त्र ही है। संस्कृत से उत्पन्न हिंदी भाषा में अरबी-फारसी का मिश्रण उसकी शुद्धता की ही हानि नहीं करता, बल्कि परंपरागत शब्दों के प्रयोग से वंचित करके हमें एक ऐसी शंकर भाषा देता है जो दो भिन्न संस्कृतियों के बेमेल से बनी है। संस्कृत भाषा सभी भारतीय भाषाओं की जननी है तथा उसमें विपुल शब्द-रचना की क्षमता है, इसलिए श्रीगुरु जी का यह दृष्टिकोण सही है कि सभी भाषाओं के लिए तकनीकी शब्दों की एक सर्वमान्य शब्दावली हो जो संस्कृत शब्दों से ही बनाई जाए। निश्चय ही अरबी-फारसी सब इसमें हमारी मदद नहीं कर सकते और न इनके शब्द देश की सभी भाषाओं को मान्य हो सकते हैं। श्रीगुरु जी का यह साहित्य एवं भाषा-चिंतन देश की एकता, अखंडता और सामरस्यता पर आधारित है। उनके लिए साहित्य और भाषा भी राष्ट्र-भक्ति तथा पवित्र राष्ट्र-कार्य के मंत्र थे तथा 'राष्ट्र रूप भगवान' के चरणों की वंदना के पुष्प थे। यदि श्रीगुरु जी के इन विचारों को आज के भारत के संदर्भ में देखें तो उनका केवल ऐतिहासिक महत्त्व भी नहीं है, बल्कि इसका संकल्प लें कि हम अपने 'राष्ट्र रूप भगवान' की एकता तथा अखंडता एवं भाषा-संस्कृति की रक्षा के लिए सदैव समर्पित रहेंगे।

सम्पर्क : दिल्ली
मो. 9811052469

डॉ. सुमन चौरे

संयुक्त परिवार : भारतीय संस्कृति की आत्मा

आज के उथल-पुथल, आपा-धापीपूर्ण जीवन व यांत्रिकी सोच में अभी भी कहीं मानवता के बीज शेष हैं, जिनके अंकुरण में यह सोच व चिन्ता नजर आती है कि हमारे नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है, हमारे पारिवारिक दायित्वों में रिक्तता नजर आती जा रही है। इन चिन्तनीय प्रश्नों का उत्तर है- 'मानव की स्वार्थपरक सोच एवं पहुँच'। यह हमारी संकीर्ण होती जा रही मानसिकता का परिचायक है।

भारतीय लोक-संस्कृति की दृष्टि बड़ी व्यापक एवं उदात्त है, जहाँ पर 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' की परिकल्पना की गई है। संयुक्त परिवार इसकी एक इकाई है। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का एक घटक है। लोक-साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय जी ने लिखा है-''भारत में सामाजिक संस्थाओं में वर्ण और आश्रम के पश्चात् संयुक्त परिवार सबसे अधिक प्रसिद्ध व महत्त्वपूर्ण है।'' हमारे धर्म-शास्त्रियों ने समाज को सुसंगठित और सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए इस संस्था का आविष्कार किया। यह संस्था भारतीय समाज के आदर्श जीवन का वरदान है। लोक-साहित्य तो परम्परागत सामाजिक मूल्यों के अनुसार होता है। लोक-गीतों में संयुक्त परिवार की विराट अनुपम झाँकी देखने को मिलती है।

निमाड़ में अभी भी संयुक्त परिवारों की परम्परा विद्यमान है। निमाड़ी लोकगीतों में सामाजिक जीवन एवं आदर्श संयुक्त परिवार का सजीव एवं सटीक चित्रण मिलता है। विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले 'बधावा गीतों' में औदार्यपूर्ण समाज का उल्लेख है, जहाँ पर सुरक्षा, संगठन, एकता, सामाजिक विकास, आर्थिक उन्नति तथा सहकारिता की भावना से अनुप्राणित होकर परिवार के सदस्य अपनी योग्यतानुरूप कार्य करते हैं, साथ ही कुल और वंश की वृद्धि की कामना भी बड़ी ही आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक सोच से करते हैं।

नारी कंठ फूटता है-

बड़ऽ जसो वधऽ म्हारे कुळऽ
पीप्पल गयरो छाव ळो जी महाराजऽ,
आजा म्हारा बठऽ गादी राजऽ
आजी ते झूलऽ पाळनाऽ जी महाराजऽ
हाँऽ जी ससरा म्हारा कचेरी का राजऽ
सासू मझघर राजणी हो राजऽ।

हाँऽ जी जेठऽ म्हारा खेतऽ खला स्यारऽ
जेठाणी अरथऽ भण्डार हो राजऽ।
हाँऽ जी देवर म्हारा हटडीऽ खऽ जायऽ
देराणी लट-पट रह्य हो राजऽ।
हाँऽ जी स्वामी म्हारो घोड़ा असवारऽ
हाँऊँ रामऽ रसोई नितऽ राँधूँऽ जी
हाँऽ जी दासी ते पीसऽ कणिक खाँडऽ
हालीड़ाऽ हळऽ हाँकऽ हो राजऽ।

'वट वृक्ष के समान मेरे परिवार में अमर वृद्धि हो। पीपल के वृक्ष की भाँति भरा पूरा परिवार हो। मेरे आजा गादी पर बैठें व आजी माँ आनन्द में झूले झूलती हो। मेरे ससुर कचहरी (घर का बैठक कक्ष) में बैठकर आन्तरिक व बाह्य क्षेत्र का प्रशासन न्याय करते हैं और मेरी सास घर परिवार के कार्यों का सुचारू रूप से सम्पादन करती हैं। मेरे जेठ खेत-खलिहान, बाग-बगीचा सबका कार्य संचालित करते हैं और मेरी जेठानी आर्थिक लेन-देन का कार्य करती हैं। मेरे देवर हाट बाजार का कार्य सम्भालते हैं व देवरानी मेरे हर कार्य में सहयोगी बनकर मेरे साथ रहती है। मेरे स्वामी घोड़े पर सवार हो, परिवार एवं व्यवसाय सम्बंधी कार्यों की चौकसी रखते हैं और मैं नित्य प्रेमपूर्वक राम रसोई करती हूँ। मेरे घर सदैव मंगल कार्य होते हैं और ब्राह्मण भोजन होते हैं। मेरे घर दासियाँ सदैव अनाज एवं खाँड (शक्कर) पीसती हैं, खेतों में हाली हल हाँकते हैं। सबके सहयोग से मेरा परिवार आनंदपूर्वक रहता है।'

उपर्युक्त गीत में एकात्म राष्ट्र की भाँति परिवार के सदस्य एक परिवार के अभ्युदय व उन्नति के लिए, योग्यता एवं शक्ति के अनुरूप कार्य कर अपने कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट नजर आते हैं।

पारिवारिक सौहार्द तो लोक-संस्कृति की आत्मा है। संस्कार गीतों में सदैव मंगल व आनंद की ही कामना की जाती है। लोक-गीतों में कार्य की बोझिलता कम करने की क्षमता होती है। इस बधावा गीत में भी पारिवारिक स्नेह, प्रेम, बंधन, एकता एवं दृढ़ता के अद्भुत दर्शन होते हैं-

जोऽ भी म्हाँया चारई भाई की जोटऽ
देराणी जेठाणी को झुमकोऽ
जोऽ भी म्हाँया गौरेऽ भैस्याऽ को ठाटऽ
सोहन खंब बिलोवणीऽ।

जी हाँ, मेरे घर चारों भाइयों में प्रेम और एकजुटता है, हम देवरानी-जेठानी स्नेह के संबंध में ऐसे बँधी हैं, जैसे झुमका हो-(एकता, एक रूपता, एक रसता तथा एकात्मक भाव का प्रतीक 'झुमका' ही हो सकता है) मेरे घर गाय-भैंसों से गोठान भरे पड़े हैं। भाइयों में एकजुटता व बहुओं में आपसी अंतस स्नेह से, घर में सम्पन्नता चरम सीमा पर है। मेरे घर सोने की बिलौनी से दही मथा जाता है।

परिवार की मानसिक निधि का स्वच्छ और आवरण-रहित जीवन दर्शन लोकगीतों में विद्यमान है, अन्यत्र दुर्लभ है। संयुक्त परिवार ही परिवार संस्था की सांझी सम्पत्ति है। इन गीतों का आस्वादन अपने लिए नहीं, अपितु जीवन को मधुर बनाने के लिए है। पारिवारिक आत्मीयता इन गीतों के प्राण हैं। रिश्तों

की घनिष्ठता इन गीतों में कैसे परिभाषित की गई है, स्वत: समझ में आती है। नारी को आभूषणों से गहरा मोह होता है। परिवार ही, जिसका आभूषण हो, यह सोच संयुक्त परिवार में रहने वाली नारी की परिष्कृत मानसिकता का परिचय है। मेरे घर आम्रवृक्ष बौरा उठा है। राजा दशरथ के दरबार जैसा चारों पुत्रों का आनंद मेरे आँगन में है। मेरा परिवार ही मेरा आभूषण है। प्रस्तुत लोक-गीत में कैसे सुन्दर और उदार भाव हैं, बस, देखते ही बनते हैं। आज के समाज में ये कल्पनातीत लगते हैं -

म्हारा ससरा होऽ माथा की राखड़ीऽ
म्हारी सासू नऽ हो राखड़ी केरो मोरऽ
सहेली अम्बो मौरियो हो।
म्हार जेठऽ हाथऽ का भुजबंदऽ
जेठाणी नऽ हो भुजबंदऽ केरी लूमऽ।
सहेली अम्बो मौरियो हो।
म्हारा देवरऽ हाथऽ की अरसीऽ
देराणी नऽ हो अरसी केरो काँचऽ।
सहेली अम्बो मौरियो हो।
म्हारा पुत्र हो नेत्रको सूरमो।
स्वामी नऽ हो हिवड़ा केरो हारऽ।

मेरे ससुर सिर पर बालों में गुँथी भाल पर शोभा पाने वाली राखड़ी (टीका) है और सासूजी उस राखड़ी में बने सुंदर मनमोहक मयूर जैसी हैं। मेरे जेठ भुजा पर पहनने वाले भुजबंद जैसे हैं और मेरी जेठानी भुजबंद में लगे मोतियों की लड़ी जैसे शोभायान हैं। मेरे देवर हथेली की पहुँची पर पहनी आरसी के समान हैं और देवरानी उस आरसी में जड़े सुंदर नग की तरह है। मेरा पुत्र आँख के अंजन जैसा शोभायमान और मेरे स्वामी हृदय के हार जैसे प्रिय हैं।

ये लोकगीत जीवन के यथार्थ की अत्यंत सरस-सरल पहचान कराते हैं, यह पहचान आज की टूटन, कुण्ठा, निराशा, संत्रास की परिस्थितियों में और भी अधिक आवश्यक हो उठती हैं। नैतिक दायित्व के पाठ पढ़ाने की कक्षाएँ चलती हैं। सास को माँ समझने व बहू को बेटी समझने की चर्चाएँ आए दिन दूरदर्शन, आकाशवाणी पर देखने-सुनने को मिलती हैं। तत्सम्बंधी विचार, लेख, गीत, कविता, कहानियाँ प्रहसन प्रतिदिन आँखों के सामने से गुजरते हैं। इसका मुख्य कारण है, मूल से कटना। हमारा मूल हमारी लोक-संस्कृति है, जो इन नाते-रिश्तों को स्नेहसिक्त भाव से परिपुष्ट करती है। इस गीत में माँ और सास का रूप एक ही भाव में पिरोया मिलता है -

म्हारी सासु सरसती नद्दी वयऽ
म्हारी मायऽ गंगा केरो नीरऽ
झड़को लग्यो रे दुई नयाना सी
म्हारा ससरा जी गाँवऽ का मानवई
म्हारो बापऽ दिल्ली केरो राजऽ।

मेरी सासू पवित्र सरस्वती प्रवाह-मान नदी जैसी हैं (नदी बस, बहती नदी ही पवित्र होती है) और मेरी माँ पवित्र सलिला गंगा-जल जैसी हैं। मुझे दोनों परिवार दोनों नेत्रों के समान प्रिय हैं। मेरे ससुर गाँव के प्रतिष्ठित माननीय हैं और मेरे पिता दिल्ली के राजा हैं।

मेरी दृष्टि में दोनों परिवार समान आदर व स्नेह से परिपोषित है। ऐसा उदार लोक आचरण मात्र गीतों में नहीं है: बल्कि यह लोकगीतों में संयुक्त परिवारों की प्रतिच्छाया है। परिवार के साथ रहकर स्वत: स्नेह उपजता है, सिखाया नहीं जाता। ऐसे आदर्श चरित्र और मर्यादा का पालन नैतिक मूल्यों के आदर्श हैं।

जहाँ बहू का परिवार के प्रति ऐसा उच्च नैतिक आदर्श है, उस परिवार में सास भी बहू के प्रति कम स्नेह नहीं रखती -

चारऽ सखी नऽ हँसी पूछऽ गोरी
थारो मखऽ गयणो बतावऽ
गळा की कंठी म्हारी रसोई मँऽ राँधऽ
छन्दऽ बंदऽ हाळऽ हाँकणऽ जायऽ।

चार सखियाँ मिलकर गोरी से पूछती हैं-हमें तुम्हारे आभूषण बताओ? गोरी कहती है, मेरे गले का आभूषण कंठी (जो कंठ से चिपकी रहती है) तो मेरी बहू है, जो रसोई में भोजन पका रही है और मेरे हाथ के कंगन मेरा पुत्र है, जो खेत में कार्य कर रहा है। परिवार में सौंदर्य की खोज व परिवार के प्रति ऐसा उत्कृष्ट अनुराग संयुक्त परिवार का सुदृढ़ आधार है। लोकगीतों द्वारा जीवन को प्रसारित प्रचारित किया जाता है।

लोक-साहित्य में लोकगीतों में वे समस्त तत्व मौजूद हैं, जो एक स्वस्थ समाज के नैतिक ढाँचे को स्थिर खड़े रख सकने में सक्षम हैं। संयुक्त परिवार में स्वार्थ साधना पर नियंत्रण रहता है, व्यक्ति अपने दायित्व के प्रति सजग रहता है, तद्नुरूप अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता है, यही मानव के उत्थान का मूल मंत्र है। यूँ तो परिवार में सहोदर भाई-बहनों की विचारधारा एवं प्रकृति में अंतर आ सकता है, फिर भी परिवार के सदस्यों के साथ रहना, प्रेम सहिष्णुता, त्याग एकता, मान-सम्मान, शांति और सद्भावना का नैतिक पाठ संयुक्त परिवार के सदस्यों को घुटी में घोलकर पिला दिया जाता है। फिर भी जहाँ कहीं ईर्ष्या-द्वेष या अभिमान का अंकुर फूटता नजर आता है, तो परिवार के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा उसे दबा दिया जाता है, इसी आशय का एक गीत है, जो वैवाहिक मण्डप के अवसर पर गाया जाता है-भाव दिनचर्या की तुलना का बड़ा उत्कृष्ट उदाहरण देकर परिवार के सदस्यों को अनुशासित किया जाता है -

मैं तो हेऽ चन्द्रमा वरजियाऽ
भाई तुमऽ सुरिमलऽ सी होड़ऽ मति गाठऽ
जड़ावऽ का रे माण्डुवा
माण्डुवा भरी रेऽ सभा मतिऽ बोलऽ...।
मैं तोहेऽ मोठा भाई वरजियाऽ
भाई तुमऽ छोटा भाई सी होड़ऽ मति गाठऽ...।
वै रे खणावऽ कुआ बावड़ीऽ
तुम खणोंऽ ते रतनऽ तलावऽ जड़ावऽ कारे माण्डुवा।

हे चन्द्रमा, मैं तुम्हें वर्जित करती हूँ कि सूर्य से होड़ मत करो। वो तो अखण्ड चलता है और तुम तो सिर्फ रात भर ही चलते हो। हे बड़े भाई, मैं तुमको वर्जित करती हूँ कि तुम छोटे भाई की होड़ मत करो, उनसे स्पर्धा मत करो, तुम कुआँ और बावड़ी खुदवा रहे हो और वे तो रतना तालाब खुदवा रहे हैं। हे भाई, गर्व के बोल मत बोलो, हमें एक मण्डप के नीचे रहना है।

'बहूना कलहः भवेत वार्ता द्वयोरपि।' संयुक्त परिवार में कुछ झगड़े अवश्य होते हैं; किन्तु संयुक्त रूप से साथ में रहने का जो अलौकिक आनंद है, वह उस विवाद को नष्ट कर देता है। परिवार में कुछ रिश्ते मधुर एवं कुछ रिश्ते कटु भी होते हैं। पारिवारिक रिश्तों में एक रिश्ता है, 'ननद' का, ' जो पति की बहन है। संस्कृत में एक शब्द है, नन्द अर्थात् आनंद देने वाला। न +नन्द = अर्थात् कितनी भी सेवा की जाये वह प्रसन्न नहीं होती। जिस प्रकार 'अहि नकुलम' साँप व नेवले का शाश्वत विरोध होता है, ऐसा ही विरोध ननद भौजाई के रिश्ते में होता है। लोकगीतों में भी इन रिश्तों का ज्वार-भाटा नजर आता है। संस्कार गीतों में तो ननन्द के बिना एक भी मांगलिक कार्य नहीं होता। उसे बड़ा आदर दिया जाता है; किन्तु नृत्य गीतों में रिश्तों की भड़ास निकाल ली जाती है -

म्हारी नणंद कड़कती बिजळई
म्हारा हिरदा मऽ धँसी जायऽ।

मेरी ननद बाई का स्वभाव कड़कती बिजली जैसा है, जिससे मेरा हृदय काँप उठता है। ननद का सबसे बुरा काम है, भावज के प्रति सबको भड़काना -

म्हारी नणंद खऽ चुगली की व्हाँणऽ
म्हारी रनुबाईऽ ओह्य...

रनुबाई मेरी ननद को चुगली की बड़ी बुरी आदत है। अपने माता-पिता और भाई से यह मेरी झूठी शिकायत करती है, सौहार्द व स्नेह के रिश्तों में कटुता घोलती है। ऐसा इसलिए भी है कि जब तक बहू नहीं आती माता-पिता, भाई सबकी प्यारी बहना ही होती है; किन्तु भावज के आने से यह प्यार बँट जाता है, उसी प्यार की पूर्ति के लिए यह ईर्ष्या भावन उत्पन्न हो गया होगा। किन्तु लोकगीतों में भावज भी कम नहीं है, वह भी अपने पति से कहती है -

पीयूजी दानऽ भी दीजो नऽ दायजोऽ
देजो म्हारो नवऽ सरयो हारऽ
पणऽ नणदी खऽ पड़ोसऽ मति राखजौऽ।

हे प्रियतम, तुम अपनी बहन को खूब दान दो, दहेज दो, लगे तो मेरे गले का नवलखा हार भी दे दो, पर पड़ोस में उसका घर मत बनवाना।

एक और गीत है जिसमें तो भावज ननद बाई को घुँघरी देने से इंकार करती है -

सगळाऽ सयरऽ मँऽ पीयूजी वटाड़ोऽ घुँघरी
म्हारी नणदी खऽ मति दीजो घुँघरी।

पुत्र जन्म की खुशी की मिठाई सब शहर में बँटवा दो स्वामी, पर ननद के घर मत देना। किन्तु ननन्द तो अपने भाई के वंश में वृद्धि से खुश ही होती है और वह भावज से कहती है -

जनमजे भावजऽ आठई पुत्रऽ
जनमजे एक दीयड़ी।

हे भावज, तू आठ पुत्रों को जन्म देना, किन्तु एक पुत्री को भी अवश्य जन्म देना कितना दर्द है, इस आशीष में कि पुत्री होगी तो उसकी भावज भी उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करेगी, तब तुझे (भावज को) मेरे दर्द का एहसास होगा। नोक-झोंक के बावजूद इन रिश्तों का अपना अलग आनंद है। अगर बड़े या संयुक्त परिवार टूट जाएँगे तो रिश्तों की पहचान विलुप्त हो जायेगी। मामा-मौसी, बुआ, काका, ताऊ नाम ही खत्म हो जाएँगे। व्यक्ति के जीवन में रिश्ते उपजने की नहीं, खरीदने की चीज हो जाएगी।

संयुक्त परिवार के पक्ष में राष्ट्रीय पुलिस आयोग की एक टिप्पणी प्राप्त हुई है-''समाज वैज्ञानिकों का यह शोधात्मक अध्ययन का निष्कर्ष है कि जब से संयुक्त परिवार टूटे हैं, तब से आर्थिक अपराधों की संख्या में अधिकता आई है।'' संयुक्त परिवार का एक सदस्य किसी भी कारण से यदि बेरोजगार हो जाये, तो पारिवारिक सहयोग व मनोबल से उसे आजीविका की इतनी अधिक चिन्ता नहीं रहती, जितनी कि एकांगी परिवार में होती है। ऐसी स्थिति में एकांगी परिवार का सदस्य संघर्ष की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, और वह आर्थिक अपराध की ओर प्रवृत्ति हो जाता है।

भारतीय संस्कृति के आदर्शों को मुँह चिढ़ाती एक नई संस्कृति फन उठाए खड़ी हो रही है- 'वृद्धाश्रम की संस्कृति'। इस संस्कृति के मूल में है संयुक्त परिवारों का विघटित होना। निष्कर्ष है कि संयुक्त परिवार की उपयोगिता और प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है जितनी पहले थी। एकांगी परिवार में कामकाजी महिलाएँ अपने नन्हें-मुन्नों का लालन-पालन आयाओं द्वारा करवाती हैं। इन आयाओं को प्रेम से आजी, नानी, दादी, बुआ, मौसी आदि सम्बोधनों से पुकारते हैं। क्या इन किराये के रिश्तों के पीछे संयुक्त परिवार की आवश्यकता या तृप्त आकांक्षा नहीं छुपी है?

संयुक्त परिवार आज भी प्रासंगिक हैं। निमाड़ लोक साहित्य के मर्मज्ञ पं. रामनारायण उपाध्याय जी संयुक्त परिवार के विषय में कहते थे कि ''ये परिवार अमृत के कुण्ड हैं।'' सहकारिता या पारस्परिक सहयोग के मूल तत्व इसमें विद्यमान हैं। ये सुदृढ़ राष्ट्र की एक सुदृढ़ इकाई हैं, जो सदाशय की प्रकृति पर निर्भर हैं। जबसे संयुक्त परिवार विच्छिन्न हुए हैं, सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट आई है।

संयुक्त परिवार में रहने का अलग ही आनंद है, यहाँ दु:ख तो बँट ही जाता है, पर सुख बहुगुणिता हो जाता है। जहाँ संयुक्त परिवार हैं, वहाँ उन परिवारों के मध्य जाकर बैठकर उस सुख को अनुभूत किया जा सकता है। चूँकि गुण-दोष तो सभी वस्तु में होते हैं, फिर भी संयुक्त परिवार के दोष नगण्य हैं, यह आज राष्ट्र की आवश्यकता है। संयुक्त परिवार आज भी प्रासंगिक एवं उपयोगी हैं। संयुक्त परिवार लोक संस्कृति के वरदान हैं। ये व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की आदर्श पाठशालाएँ हैं। भारतीय संस्कृति को जीवनदायिनी ऊर्जा प्रदान करने वाले अमर, स्रोतों में से एक अजर-अमर स्रोत संयुक्त परिवार भी है।

सम्पर्क : मुंबई (महा.)
मो. 09424440377

डॉ. (सुश्री) शरद सिंह

वैदिक वाङ्मय में जल की महत्ता एवं जल संरक्षण

भविष्य का सबसे डरावना सच अगर आज कोई है तो वह है जल का अभाव। शहरी क्षेत्रों में दम तोड़ते जलस्तरों वाले जल स्रोतों के पास लम्बी कतारें और पानी के लिए आपस में झगड़ते लोगों को देखा जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में दृश्य और अधिक भयावह होते हैं। वहाँ मिट्टी और रेत में गढ़े बना कर और गहरी खाइयों में उतर कर जान जोखिम में डाल कर जिन्दा रहने लायक पानी मिल पाता है। दुख तो यह है कि पानी और सूखे के जिस पारस्परिक संबंध के बारे में हम अपने बचपन से पढ़ते, सुनते और समझते आ रहे हैं, उसे ही भुला बैठे हैं। पानी नहीं रहेगा तो सूखा पड़ेगा और सूखा पड़ेगा तो पानी उपलब्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गर्मी का मौसम आते ही पानी की किल्लत सिर चढ़कर बोलने लगती है। जल ही तो जीवन है। यदि जल नहीं तो जीवन कहाँ? स्वतंत्र भारत में अनेक बाँधों के निर्माण के बाद भी लापरवाही, अव्यवस्था और सजगता के अभाव के कारण जल-संकट निरन्तर बढ़ता गया है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल के स्रोत कम होते हैं तथा जल स्तर गिर जाता है, उन क्षेत्रों की स्त्रियों को कई किलोमीटर पैदल चल कर अपने परिवार के लिए पीने का पानी जुटाना पड़ता है। प्रदूषित जल भी एक बड़ी समस्या है। भारत में हर साल एक लाख से भी अधिक लोगों की प्रदूषित जल के कारण मृत्यु हो जाती है। ताजा आँकड़ों के मुताबिक भारत के कुल रोगियों में 77 प्रतिशत हैजा, पीलिया, दस्त और टाइफाइड जैसी बीमारियों से पीड़ित होते हैं। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन के आँकड़ों के अनुसार हर साल भारत में पेचिश के कारण 98, 000 बच्चों की मत्यु हो जाती है।

अत: अब समय आ गया है कि हम अपने अतीत के उन पन्नों को पलटें जिन पर जल के महत्त्व और संरक्षण के बारे में ज्ञान संरक्षित है। जी हाँ, हमारा वैदिक वाङ्मय असीमित ज्ञान का भंडार है जो हमें पर्यावरण से तादात्म्य स्थापित करने का मार्ग दिखाता है। वैदिक ग्रंथ हमें प्रकृति का सम्मान करना सिखाते हैं। जब हम किसी का सम्मान करते हैं उसे अपना घनिष्ठ मानते हैं तो उसे किसी भी प्रकार से हानि पहुँचाने के बारे में नहीं सोचते हैं। इसीलिए वैदिककाल में पर्यावरण एवं जल की उपलब्धता के लिए कोई संकट नहीं रहा किन्तु भौतिकवाद एवं स्वार्थ की अंधी दौड़ में हम प्रकृति से अपना नाता तोड़ते गए जिसका दुष्परिणाम जलसंकट के रूप में आज हमारे सामने है।

वैदिक युग में जल स्तुति का केन्द्र रहा। ऋग्वेद में जल देवता से प्रार्थना की गई है कि-

इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि/ यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्।।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त 23, श्लोक 22)

– अर्थात् हे जल देवता! मुझसे जो भी पाप हुआ हो, उसे तुम दूर बहा दो अथवा मुझसे जो भी द्रोह हुआ हो, मेरे किसी कृत्य से किसी को पीड़ा हुई हो अथवा मैंने किसी को अपशब्द कहा हो, अथवा असत्य भाषण किया हो, तो वह सब भी दूर बहा दो।

वस्तुतः वैदिककाल में जल को सर्वोच्च स्थान दिया गया। किसी भी कार्य का प्रारम्भ पूजा से होता है और प्रत्येक कार्य का विसर्जन भी पूजा से ही होता है। पूजा हेतु सर्वप्रथम पूजनस्थल एवं देवप्रतिमाओं (वर्तमान में) को पवित्र करने की आवश्यकता होती है और पवित्र करने के लिए जल का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार पूजा के विसर्जन के समय किए जाने वाले शान्तिपाठ के समय पवित्र जल के अभिसिंचन के साथ मंत्रोच्चार किया जाता है। अतः यज्ञ एवं पूजा जल के प्रयोग के बिना संभव ही नहीं है। वैदिक वाङ्मय में जीवन के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में जल के महत्त्व को विस्तार व्याख्यायित किया गया है।

अप्सु अन्तः अमृतम् अप्सु भेषजम् अपाम् उत प्रशस्तये, देवाः भवत वाजिनः।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त 23, श्लोक 19)

भावार्थ–जल में अमृत है, जल में औषधि है। हे ऋषि जनों, ऐसे श्रेष्ठ जल की प्रशंसा अर्थात् स्तुति करने में शीघ्रता बरतें। जल ही जीवन है, जीवन का आधार भी यही है। जल के बिना जीवन की कल्पना तक संभव नहीं है। जल स्वयं में औषधि (दवाई) है, यह जल ही शरीर के दूषित (हानिकारक) तत्वों को मूत्र के माध्यम से निष्कासित करता है। ऐसे जल की स्तुति में ऋषि मुनियों, यज्ञ–पुरोहित और मानव को विलंब नहीं करना चाहिए।

आपःपृणीतभेषजंवरूथंतन्वेमम ज्योक्कसूर्यंदृशे।।

आपः पृणीत भेषजम् वरूथम् तन्वे मम, ज्योक् च सूर्यम् दृशे।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त 23, श्लोक 21)

जल मेरे शरीर के लिए रोगनिवारक औषध की पूर्ति करे। हम चिरकाल तक सूर्य को देखें।

अपो देवीरूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।।/ सिन्धुभ्यः कर्त्व हविः।।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त 23, श्लोक 18)

हमारी गायें जिस जल का सेवन करती हैं, उल जलों का हम स्तुतिगान करते हैं। अन्तरिक्ष एवं भूमि पर प्रवहमान उन जलों के लिए हम हवि अर्पित करते हैं।

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः।।

ता इन्द्रस्य न मिनन्तिं व्रतानि सिन्धुभ्यो हण्यं घृतवज्जुहोत।।

(ऋग्वेद, सप्तम मण्डल, सूक्त 47, श्लोक 03)

ये जलदेवता हर प्रकार से पवित्र करके तृप्ति सहित प्राणियों में प्रसन्नता भरते हैं। वे जलदेव यज्ञ में पधारते हैं, परन्तु विघ्न नहीं डालते। इसलिए नदियों के निरंतर प्रवाह के लिए यज्ञ करते रहें।

या आपो दिव्या उत वा स्त्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः।।

समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।। (ऋग्वेद, सप्तम मण्डल, सूक्त 49, श्लोक 02)

ऐसा दिव्य जल जो हमें वर्षा से प्राप्त होता है, जो नदियों में बह रहा है, जो खोदकर कुँए से मिलता है। ऐसा कोई भी जल श्रोत जो स्वयं प्रवाहित होकर समुद्र में मिल जाता है। ऐसा दिव्य जल हमारी रक्षा करे।

वैशेषिक दर्शन के द्वितीय अध्याय में जल की विशेषता को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है–

रूपरसस्पर्शवत्य आपोद्रवाः स्निग्धाः।।

(वैशेषिक दर्शन, द्वितीय अध्याय, श्लोक 02)

अर्थात् जल तत्व में रूप, रस और स्पर्श ये तीनों गुण पाए जाते हैं।

अथर्ववेद में जल के पाँचों गुणों का वर्णन है। 1. तपस–गर्म होना, गर्मी देना, ताप और संताप 2. हरस दोष या मल को दूर करना, स्वच्छता प्रदान करना 3. अर्चिस–तपाना, रगड़ से विद्युत उत्पादन, उत्तेजना देना। 4. शोचिस–प्रकाश देना, दाहकत्व और शोधकत्व। 5. तेजस–तेज, कांति, सौंदर्य, लावण्य और प्रसन्नता देना। ऋग्वेद में जल के तीन गुणोह्यं का विशिष्ट उल्लेख है। 1. मधुश्चुतः–मधु या मधुरता देने वाले। 2. शुचयः दोषों या मलों को निकालकर स्वच्छता प्रदान करने वाले। 3. पावकाङ दोषों को जलाने, शुद्ध करने और पवित्रता प्रदान करने वाले। अतः जल देवालय है।

जल का उपयोग चिकित्सा के लिए भी किया जाता रहा है, जैसा कि यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में आह्वान किया गया है कि–

युष्मौइन्द्रोवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्र्मवृणीध्वं
वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ, अग्नये त्वा जुष्टं
प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याँ त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोशुद्धा।
पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि।।

(यजुर्वेद, प्रथम अध्याय, श्लोक 13)

अर्थात् जैसे यह सूर्यलोक, मेघ के वध के लिए, जल को स्वीकार करता है, जैसे जल, वायु को स्वीकार करते हैं, वैसे ही हे मनुष्यों! तुम लोग उन जल औषधि–रसों को शुद्ध करने के लिए, मेघ के शीघ्र वेग में, लौकिक पदार्थों का अभिसिंचन करने वाले, जल को स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध होते हैं, वैसे ही तुम भी शुद्ध हो जाओ।

यजुर्वेद के चौथे अध्याय में यह कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि सब सुखों को देने वाला, प्राणों को धारण करने वाला तथा माता के समान, पालन–पोषण करने वाला जो जल है, उससे शुचिता को प्राप्त कर, जल का शोधन करने के पश्चात् ही, उसका उपयोग करना चाहिए, जिससे देह को सुंदर वर्ण, रोग–मुक्त देह प्राप्त कर, अनवरत उपक्रम सहित, धार्मिक अनुष्ठान करते हुए, अपने पुरुषार्थ से आनंद की प्राप्ति हो सके–

आपोअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्व हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतैएमि।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा शग्मां परिदधे भद्रं वर्णम पुष्यन्।

– (यजुर्वेद, चतुर्थ अध्याय, श्लोक 02)

अथर्ववेद में यह निर्देश है कि मनुष्य को चाहिए कि वह वर्षा, कुँआ, नदी और सागर के जल को, अपने खान-पान, खेती और शिल्प-कला आदि के लिए उपयोग करे एवं अपने जीवन को सम्पूर्ण बनाएँ और चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करे-

शं त आपो हैमवती: शमु ते सन्तूत्स्या:।/ शं ते सनिष्पदा आप: शमु ते सन्तु वर्ष्या:।।

- (अथर्ववेद, काण्ड 19, सूक्त 02)

जल का संरक्षण उसकी शुद्धता में निहित है। ऋग्वेद में मानव के रक्षक पदार्थों में जल, औषधि, वन वृक्ष पर्वत और द्युलोक का उल्लेख है। इन पदार्थों को हानि पहुँचाना, अपनी रक्षा को संकट में डालना है। यजुर्वेद के अनुसार ''जल को दूषित न करो और वृक्ष वनस्पतियों को हानि न पहुँचाओ। जल को शुद्ध रखो, पौष्टिक गुणों से युक्त करो तथा औषधियों को जल से सींचकर सुरक्षित रखो।''

ऋग्वेद में कहा गया है कि ''हे परमात्मन हमें प्रदूषण रहित जल, औषधियाँ और वन दो। प्रदूषण रहित जल ही स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। नदियों आदि के जल को प्रदूषण मुक्त रखने का उपाय है- यज्ञ। यज्ञ की सुगंधित वायु जल के प्रदूषण को नष्ट करती है।''

यदि हम अपने वैदिक वाङ्मय का ध्यानपूर्वक अनुशीलन करें तो हम जल के महत्त्व को भली-भांति समझ सकते हैं। यह सर्वविदित है कि जो भी तथ्य अथवा तत्व हमें महत्त्वपूर्ण लगता है हम उसके प्रति सजग रहते हैं। अत: हमें जल के महत्त्व को समझते हुए उसके संरक्षण के बारे में भी तत्पर रहना होगा तभी हम अपनी आने वाली पीढ़ी को शुद्धजल सौंप सकेंगे। हमें प्रकृति और पर्यावरण के हर घटक को देवतुल्य मानकर संरक्षित एवं विकसित करने का प्रयास करना होगा। तभी पृथ्वी प्रसन्न रहेगी और अस्तित्व में रहेगी।

शांता द्यौ: शांता पृथिवी/ शांतमिदभुर्वशंतरिक्षम्।

शांता उदंवतीराप:/ शांता न: संत्वोषधी:।।-(अथर्ववेद, 21/9/1)

अर्थात् अत्यधिक ऊर्जावान वाला प्रकाश शांत हो, पृथ्वी की अशांति शांत हो, अंतरिक्ष शांत हो, उत्तम जल वाली उफनती नदियाँ शांत हों, औषधियाँ शांत हों। पृथ्वी पर और पृथ्वी तथा आकाश के मध्य जहाँ कहीं भी प्राकृतिक विपदाएँ आएँ, वे प्राणिमात्र के लिए शांतिदायक हों। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली समस्त औषधियाँ प्राणी के दु:ख को शमन करने वाली हों अर्थात् ईश्वर ने जिस प्रकृति की सृष्टि की है, वह प्राणिमात्र के लिए सुखकारी हो। यह प्रार्थना हमारे चित्त को शांत करती हुई हमें विचार करने का अवसर प्रदान करती है कि हम जल के महत्त्व को समझें और उसे संरक्षित करें। वस्तुत: हमारी भारतीय संस्कृति में प्रकृति के सभी तत्वों में देवत्व देखा गया और उन्हें पूज्य माना गया। जब हम किसी व्यक्ति या तत्व को पूज्य मानते हैं तो हम उसका अनादर या अवहेलना नहीं कर पाते हैं। पाश्चात्य प्रभाव ने हमें हमारी पारंपरिक स्मृतियों से शनै:-शनै: दूर कर दिया। उस पर बाजारतंत्र ने हमारे हाथों से प्रकृतिक शुद्ध जल को हटा कर प्यूरीफायर का बोतलबंद जल पकड़ा दिया। किन्तु अभी भी समय है कि हम अपने वाङ्मय से पुन: जुड़ें और जल जैसे प्राकृति व जीवनदायी तत्व के संरक्षण उवं संवर्द्धन के प्राकृतिक उपाय अपना कर अपना और आने वाली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित करें।

सम्पर्क : सागर (म.प्र.)

मो. 7987723900, 9425192542, 7987723900

हेमंत उपाध्याय

पुराने कोट व तापड़ी की याद

आज मैं सर्व सुविधा सम्पन्न हूँ। रूम हीटर, गीजर, मोटी रजाई सब है, किन्तु मैं गाँव की ठंड के वो दिन नहीं भूल पाता, जिसमें चार माह आनन्द ही आनन्द होता था। रात को पुरानी साड़ियों की गोदड़ी ओढ़ने का आनन्द अब मोटी रजाइयों में नहीं आता। गोदड़ी शरीर से चिपकी रहती थी तो रजाई रात भर फिसलती रहती है। गादी की खोल दादी माँ की पुरानी साड़ी की होती थी तो गोदड़ी की खोल माँ की पुरानी साड़ी की। गोदड़ी मुझसे चिपक कर रहती थी एवं मैं गादी से चिपक कर रहता था तो ऐसे लगता था दादी माँ और माँ दोनों ने मुझे ठंड से बचाने के लिए मुझे बीच में चिपका लिया है। जब मैं लगभग 4 साल का था तब अपने पैतृक ग्राम कालमुखी जिला खण्डवा में रहता था। गाँव में कोई कोट सिलने वाला टेलर नहीं था सो माँ ने कड़ाके की ठंड से बचाने के लिए लकड़ी की बड़ी भारी पेटी में से बड़े भाई साहब का पुराना कोट निकाल कर मुझे पहना दिया। जो 17 साल पहले बड़े भाई पहनते थे और जो मेरे पहले बिचले भाई कई वर्ष पहन चुके थे। थर्ड हेण्डकोट पहन कर मैं बहुत गौरवान्वित हुआ। काली बिल्ली जैसा लाइनों वाला कई जेब वाला कोट मैंने होश संभालने के बाद पहली बार ही देखा था, वह भी स्वयं के बदन पर। ऊपर कोट तो नीचे पट्टे का पायजामा या हाफपेंट होता था। आज जब मैं ठंड में शहर के लोगों को टायर-ट्युब जलाते देखता हूँ तो उसकी दुर्गन्ध मुझे गाँव की तापड़ी की सुगन्ध की खूब याद दिलाती है। ठंड में सुबह एवं रात को तापड़ी जलाने का आनन्द ही निराला होता था। घर की तुवरकाठी, कंडे, लकड़ी जला कर हम घर के सदस्य और दोस्त सामने विशाल बाड़े में इकठ्ठे होकर हाथ पाँव तापने के साथ ही कहानी किस्से सुनाते थे। तिल पट्टी, गुड़पट्टी खूब खाने को मिलती थी। मेरी गोरी गाय का दूध व पिंड खजूर खाने का आनन्द ही अलग था। गाजर का हलवा भी सुलभ था। सर्दी-खाँसी होने पर गुड़, अदरक और तुलसी की चाय से बीमारी भाग जाती थी।

शाम को जब खेत से बैल गाड़ी आकर हमारी गली में मुड़ती थी तो बैलों के गलों के घुँघरुओं की आवाज तेज हो जाती थी। लगता था बैलों को भी घर आने की खुशी हो रही है, इसलिए वे तेज दोड़ रहे हैं। गाड़ी में होले (चने) के बहुत से पौधे जरूर होते थे। कुछ होला हरियाला कच्चा ही खा जाते थे एवं कुछ ज्यादा पके पीले होले के पौधे होते थे, उन्हें तापड़ी में सेंकने के लिए रख लेते थे। तापड़ी के सामने छोटी सी खाट बिछा कर बैठ जाते थे। हाथ-पाँव सेंकते थे। कभी बैठा कन्हैया मामा (कामदार) होला सेंकता था

तो कभी रामदास सिगरेट के ठाठ के साथ झुक कर होला सेंकता था। देखते ही देखते छोड़ में होले बफने लगते थे। खूशबू चारों ओर फैलती थी। चने छोड़ से गिरकर तापड़ी के गुलाबी अंगारों पर इकठ्ठे हो जाते थे। कुछ ही मिनट में होले गिरगिट की तरह रंग बदल कर हरे से पीले और पीले से काले हो जाते थे। फिर सुपड़े में उन्हें इकठ्ठा कर झाड कर अंगार कचरा व राख बाहर कर बाँस की टोपली में होले निकालते ही खाने का काम चालू हो जाता था।

इसी सीजन में किसी दिन बटला फल्ली भी आ जाती थी। कभी-कभी गेहूँ की मीठी बाली आ जाती थी, जिसे हुम्बी कहते थे। गेहूँ की बालियों को तापड़ी पर गोल-गोल घुमा कर मधुरी आँच में सेंका जाता था। फिर इसके दाने निकाल कर जेब में भर कर घंटों धीरे-धीरे खाते रहते थे। ऐसे कई अवसर आते थे कि कोट की चारों जेब प्राकृतिक उपादानों से भर जाती थीं। नीचे की एक जेब में होला। दूसरी में गेहूँ के सिके दाने तो ऊपर की जेब में मटर की फली (बटला फल्ली) और अंदर की जेब में ज्वार के दाने। ज्वार के भुट्टे दूध से भरने पर हरे भुट्टे काटे जाते। एक-एक भुट्टे को आँच पर गोल-गोल घुमाया जाता। अच्छे सिक जाने के बाद। भुट्टों को चद्दर में ठंडल सहित डाला जाता और पिराहनी या डंडे से खूब पीटा जाता। निमाड़ी में इसे भुट्टे झोड़ना कहते हैं। गाँव में किसी को चारों तरफ से घेर के खूब पीटा जाता है तो कहते हैं- खूब झोड़ा माने भुट्टे से दाने निकालने की तरह पिटाई की। भुट्टे के दानों के साथ तिल्ली भी मिलाई जाती तो और भी अच्छे लगते। जब तक इनका मौसम चलता तब तक चाकलेट, बिस्किट, सेंव-चुड़वा बुरे लगते। उधर देखना भी पसंद नहीं होता।

भाई साहब का पुराना कोट दो ठंड में ही छोटा हो गया और यानी मेरे छोटे भाई के लिए सँभाल कर रख दिया। उसके दो साल पहनने के बाद गाँव के गरीब बच्चे को दे दिया। फिर 17 साल के अन्तराल के बाद नया कोट शादी में सिलाने का मुझे अवसर आया वह भी मेचिंग की फु लपेंट सहित और ससुराल बारात लेकर पहुँचने पर एक और कोट मेचिंग के रंग की फुल पेंट सहित मिला। घोड़ी पर से उतरने और शादी के बाद घर आने पर उन्हें पहनने के बरसों अवसर नहीं आये। कभी-कभार कोट पहना भी तो मजबूरी व अरुचि से। जो रुचि मोठा भाई के उतारे हुए 17 साल पुराने कोट पहनने में थी, वह नया कोट पहनने में नहीं। ऐसा लगता था पुराने कोट के साथ परिवार के संस्कार भी साथ हैं। शादी के शुरुआती सालो में ठंड में कभी-कभी नया कोट पहनते भी तो घर आने पर तलाशी होती कितने पैसे ले गए थे। बचे कितने और यह सिगरेट कहाँ से आ गई। मेरे होते हुये इस सौतन को क्यों मुँह लगा रहे हो? मारे डरके मैंने सिगरेट भादवा माता के मंदिर में छोड़ दी एवं खण्डवा वापिस आकर कोट भी पहनना छोड़ दिया। गाँव का वह पुराना कोट और पुराने दिनों को 60 साल बाद याद कर आज भी मैं मन ही मन गुनगुनाता हूँ- कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन।

सम्पर्क : खण्डवा (म.प्र.)
मो. 9425086246 /7999749125

डॉ. मनीष चौरे

अपना गाँव

भारत गाँव का देश है। यहाँ दो-तिहाई से अधिक लोग गाँव में बसते हैं और गाँव बसता है, हमारे दिल में, हमारे हृदय में, हमारी आत्मा में। हम सभी का एक गाँव जरूर होता है। गाँव नहीं भी हो तो हृदय में एक गाँव जरूर बसा होता है। क्योंकि हम कितना भी शहरी होने का दम्भ भरे, हमारी जड़ें तो गाँव की मिट्टी में ही होती है। व्यक्ति कस्बे में रहे, नगर में रहे या महानगर में गाँव हमेशा उसकी स्मृति और एहसासों में साथ होता है। इसलिए यह सच्चाई है कि व्यक्ति गाँव छोड़ता है, गाँव उसे कभी नहीं छोड़ता।

गाँव की आबोहवा, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, बोलचाल सभी में आत्मीयता और अपनेपन का मीठा एहसास होता है। गाँव में सामाजिक, सांस्कृतिक समरूपता पाई जाती है। सभी लोग प्राय: एक ही भाषा, परंपरा, संस्कृति, जीवन शैली अपनाते हैं। आज भले ही शहरों में लोग अपनी संस्कृति और परंपरा को कई हद तक भुला चुके हों पर ग्राम वासियों के दिलों में अपनी परंपरा और संस्कृति के प्रति मोह और सम्मान का भाव जस-का-तस है। गाँव आज भी अपनी परंपराओं को पीड़ी-दर-पीड़ी सहेजे हुए हैं। गाँव के उत्सवों और त्यौहारों में जब ग्रामवासी एक-लय, एक-ताल में नाचते-गाते हैं तो परम्पराएँ जीवन्त होती हैं। पंक्तियों में बैठ कर भोजन करते हैं तो परम्पराएँ विकसित होती हैं। बड़े-बुजर्गों के सम्मान में सिर झुकते हैं तो संस्कार पल्लवित होते हैं। ग्रामवासी जब प्रभात-फेरी और संझा आरती में शामिल होते हैं तो सामूहिक एकता और आस्था को बल मिलता है। गाँव के लोग अन्न का एक दाना भी व्यर्थ नहीं जाने देते।

गाँव का परिवेश आकर्षक और मनमोहक होता है। गोबर और गेरू से लिपे-पुते घर-आँगन, द्वार पर स्वच्छंद विचरण करते गाय, बछड़े, फल-फूलों से लदे आम, नीम, नीबू और अमरूद के छायादार बगीचे बरवस ही मन को मोह लेते हैं। इसलिए हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि गाँव हैं तो हम हैं, सभ्यता है, संस्कृति है, मनुष्यता है, रीति-रिवाज हैं, परंपराएँ, तीज-त्यौहार और उत्सव हैं। यहाँ की कलकल बहती नदियाँ, हरे-भरे पेड़-पौधे, मिट्टी की महक और पशु-पक्षियों की चहक सभी अपने सह-अस्तित्व का एहसास कराते हैं। इसलिए कहते हैं- शहर की दवा और गाँव की हवा बराबर होती है।

यूँ तो अपने परिवेश और गाँव की मिट्टी को कोई छोड़ना नहीं चाहता। परन्तु हालात, परिस्थितियाँ और जिम्मेदारी हमें मजबूर कर देतें हैं शहर की भीड़ में खो जाने को। जीवन निर्वाहन के चलते छूट ही जाता है गाँव हमसे पीछे...।

मुझे याद है जब मैं पहली बार जीवन-उपार्जन के लिए गाँव से शहर गया तो मुझे माँ के हाथों की रोटी और गाँव की माटी बहुत याद आई। क्योंकि शहर जहाँ अपनी चकाचौंध और कोलाहल में हमारी पहचान हमारे अस्तित्व को लील जाता है, वही गाँव हमें देता है मान-सम्मान और पहचान। शहरी लोगों की निरंतर शून्य होती भाव-संवेदनाएँ और छद्म मानवीय चेहरे हम से अछूते नहीं। वही गाँव की शांति, सहयोग और सह-अस्तित्व का जीवन, विस्तार करता है हमारे भाव-संवेदनाओं का हमारे 'मनुष्यतत्व' का।

भगवान श्रीकृष्ण भी गाँव बिछोह की पीड़ा को सह नहीं पाते, भरे गले से उद्धव से कह उठते हैं- ऊधो! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। उनके शब्दों में उनकी पीड़ा को हम स्पष्ट महसूस कर सकते हैं भावातिरेक के कारण उनका गला रुँध जाता है तब अंधे सूरदास भगवान के भावों को अपने शब्दों में बयाँ करते 'भ्रमरगीत सार' में लिखते हैं-

हंससुता की सुन्दरि कगरी, अरु कुंजन की छाहीं।।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहाबन जाहीं।
ग्वाल-बाल सब करत कोलाहल, नाचत गहि-गहि बाँहीं।।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि-मुक्ताहल जाहीं।
जबहीं सुरति आबति बा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं।।

लीलाधर कृष्ण अपनी स्मृति से क्षण भर के लिए भी ब्रज को बिसर नहीं पाते। वह उद्धव से कहते हैं मथुरा यद्यपि सोने की नगरी है, जहाँ मणि-मुक्ताओं के रूप में अगाध संपत्ति और वैभव बिखरा रहता है, परंतु जब मुझे ब्रज में भोगे हुए सुख की याद आती है तो मन वहाँ जाने के लिए उमड़ने लगता है, व्याकुल हो उठता है और मैं अपने शरीर की सारी सुध-बुध भूल जाता हूँ। जब भगवान कृष्ण गाँव के बिछोह को सहन नहीं कर पाते तो फिर हम तो साधारण मनुष्य हैं। हमारी क्या बिसात।

कुछ तो आकर्षण है इस गाँव की माटी में जो कोरोना-काल में लाखों लोगों को भूखे-प्यासे, नंगे पैर हजारों मिलों से चुंबक की तरह खींच लाती है अपनी ओर। उनके दर्द, उनकी पीड़ा, उनकी थकान, उनकी भूख-प्यास, उनकी आह में केवल एक ही आवाज थी अपना गाँव। हम कैसे भूल सकते हैं जब कोरोना में शहर के चप्पे-चप्पे पर पुलिस का पहरा था तब गाँव हाथ फैलाए अपने लोगों को गले लगा रहा था।

भगवान राम के जीवन में हम सुख और दुख का अद्भुत संतुलन देखते हैं। वह दुख के साथ-साथ खुशी में भी बड़े संयमित रहते थे। परन्तु वनवास से लौटते हुए विमान से अयोध्या नगरी देख, उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। अपनी खुशी को व्यक्त करते हुए वह कहते हैं-

'जन्मभूमि मम पुरी सुहाविन। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
अति प्रिय मोहिं इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी।'

अर्थात् यह सुहावनी अयोध्या नगरी मेरी जन्मभूमि है इसके उत्तर-दिशा में पवित्र सरयू नदी बहती है। यहाँ के लोग मुझे प्राणों से प्रिय हैं। राम की वाणी सुनकर सारे वानर हर्षित हो गए क्योंकि अपने प्रभु को इतना प्रसन्न उन्होंने कम ही देखा था। अपनी जन्मभूमि के प्रति उनकी जो निष्ठा थी, वह एक बात हमें भी सिखाती है कि भूमि से हमारा जो भी संबंध हो जन्म का या कर्म का जीवन भर उसके उपकार को नहीं भूलना चाहिए और जब भी अपनी जन्मभूमि पर लौटने का अवसर मिले तो हमें भगवान राम की तरह

प्रसन्नता पूर्वक लौटना चाहिए। महाकवि कालिदास अपने परिवेश, अपनी माटी से कटकर जीवन-भर व्यथित रहते हैं, अपने आपको अधूरा महसूस करते हैं। उनकी रचनाओं में उनके परिवेश और प्रकृति के प्रति वेदना और मोह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

वंशानुगत माता-पिता के जींस अपने बच्चों में स्वत: ही हस्तांतरित होते हैं उनकी शारीरिक बनावट उनकी आदतें माता-पिता से मिलती हैं। उसी तरह गाँव की माटी, उसके वातावरण और परिवेश का प्रभाव भी हमारे जीवन और मन पर अवश्य ही होता है। हमारे व्यक्तित्व निर्माण में अपने गाँव की भूमिका को हम नजर-अंदाज नहीं कर सकते। जिस तरह माँ के प्रति, मातृभूमि के प्रति दायित्व बोध को हम हृदय से महसूस करते हैं, उसी प्रकार गाँव की माटी के प्रति भी हमारे कुछ कर्ज और फर्ज होते हैं जिन्हें अवसर मिलने पर पूरी शिद्दत से निभाना चाहिए। कहते हैं एक उम्र के बाद हमारी गाँव की माटी हमें पुकारती है, बुलाती है, आवाज देती है जिसे केवल संवेदनशील व्यक्ति ही सुन पाता है। बाकी भौतिक सुख-सुविधाओं के आदी हो चुके लोग अनसुना कर देते हैं। वह अपनी आधी-अधूरी जिंदगी, शहर और देश के बाहर ही अपने आप को मुकम्मल पाते हैं। किस्मत वालों को ही अपना परिवेश अपना गाँव दोबारा नसीब होता है। अगर हमें अवसर मिले तो अपने जीवनअनुभव, जीवन की सीख और उद्देश्य के साथ अपने गाँव परिवेश में वापस लौटना चाहिए। गाँव के लोग जब देश-विदेश से अपने अनुभव, अपने कौशल, अपनी तकनिक लेकर लौटेंगे और आने वाली पीढ़ी को उत्साह से हस्तांतरित करेंगे तो गाँव के चहुमुखी विकास को कोई नहीं रोक सकता। क्योंकि गाँव की समस्याओं और कमियों को हम से बेहतर कौन समझ सकता है।

एक उम्र के बाद हमें अपनी जिम्मेदारी समझते हुए पैसे और पद का मोह त्याग कर सामाजिक मान-सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए जीना चाहिए। अपने जीवन-कौशल को दूसरों की भलाई और जीवन-स्तर को बेहतर बनाने में समर्पित करना चाहिए। सही मायने में यही सच्चे इंसान की पहचान है।

अगर यह जिम्मेदारी का भाव प्रत्येक शहरवासी महसूस करें तो निश्चित ही गाँव के पास अनुभवी शिक्षक होंगे जो पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ जीवन-निर्वाहन के व्यावहारिक ज्ञान से नई पीढ़ी को साक्षात्कार कराएंगे। गाँव के पास बेहतर इंजीनियर होंगे जो गाँव के बच्चों को तकनीकी कौशल में दक्ष बनाकर उनकी जीविका उपार्जन में सहायक होंगे। गाँव में अनुभवी डॉक्टर होंगे जो गाँव के बच्चे, बूढ़े और स्त्रियों को बेहतर स्वास्थ्य और सहत के गुण सिखाएँगे। अनुभवी व्यवसाई होंगे जो व्यवसाय के नई-नई तकनीक और हुनर को नई पीढ़ी को हस्तांतरित करेंगे। अच्छे वकील और सलाहकार होंगे जो कानून के दाँव-पेंच और अधिकारों के प्रति लोगों को सचेत करेंगे। गाँव में सेवानिवृत्त मातृभूमि के सच्चे सपूत होंगे जो आने वाली पीढ़ी को शारीरिक और मानसिक रूप से मजबूत बनाकर उनको राष्ट्र की रक्षा में अपने प्राणों के उत्सर्ग का पाठ पढ़ाएँगे। इस तरह हम देखेंगे कि हमारे गाँव हर दिशा में सक्षम होंगे बेहतर उन्नति करेंगे साथ ही शहर पर होने वाला जनसंख्या दबाव भी कम होगा।

गांधी जी ने कहा था कि असली भारत गाँवों में बसता है। हमें अपने विकास को गाँव पर केंद्रित करना होगा। खुशहाल गाँव में ही खुशहाल भारत का निर्माण संभव है। गाँव की पगडंडियों पर लोट कर ही गाँधी जी के इस सपने को पूरा किया जा सकता है। आपके गाँव की पगडंडियाँ आपका इंतजार कर रही हैं...।

सम्पर्क : इटारसी (म.प्र.)
मो. 9827570678

सुधा रानी तैलंग

संघर्ष शील व संकल्पवान व्यक्तित्व

गोस्वामी चौक, बीकानेर में रंगों और कूचियों से खेलने वाले छोटे से बच्चे ने आगे जा कर अपने हुनर को अनूठे आयाम दिए। मुम्बई जैसे महानगर में मात्र बाईस साल की उम्र में सुधीर तैलंग के बारे में किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था कि आगे जाकर ये लड़का देश-विदेश में कार्टून कला के साथ फिल्म निर्माण, व पत्रकारिता में अपनी पहचान बनायेगा। सुधीर तैलंग को 1986 में राजस्थान रत्न, व 2004 में पद्मश्री सम्मान का मिलना पूरे बीकानेर के लिये गर्व की बात रही।

26 फरवरी 1960 को जन्मे सुधीर उम्र में मुझसे पाँच साल छोटे थे। सुधीर तैलंग के साथ मेरा बचपन बीता। बहुत सी यादें आज भी मन में हिलोरें मारती रहती हैं। मानो कल की ही बात हो।

जहाँ तक मुझे याद है कि बचपन में सुधीर खिलौनों की जगह चॉक, कागज, पेन्सिल, ब्रश व कलर से खेलता था। वह अक्सर पेंसिल, चॉक से घर की दीवारों, फर्श के साथ-साथ कॉपी, कागजों पर आड़ी तिरछी रेखायें बनाया करते थे। पाँच-छः साल की उम्र में सुधीर की आड़ी-तिरछी रेखाओं ने आकार लेना शुरू कर दिया। उस दौर में कामिक्स का जादू बच्चों पर था। ऐसे में सुधीर भी अपनी जेब खर्च के पैसों से कामिक्स खरीदते थे। सुधीर टिनटिन और फैंटम से प्रभावित थे।

हमारे दादाजी पं. गोविन्द लाल जी गोस्वामी कोटी महाराज ध्रुपद व हवेली संगीत के प्रसिद्ध गायक थे। घर में प्रिंटिंग प्रेस होने के कारण कागजों, पत्र-पत्रिकाओं का अम्बार लगा रहता था। कार्टून के प्रति सुधीर के बढ़ते शौक को देखकर हमारे बाबूजी कलकत्ता से कार्टून के ब्लाक्स, कैटलाग्स मँगवाते थे। बाबूजी की मदद से सुधीर ने कार्टून बनाने शुरू किए। सुधीर के कार्टून के शौक ने धीरे-धीरे जुनून का रूप ले लिया। पेंसिल की जगह निब, कलम, स्याही व ब्रश ने ले ली। सुधीर क्लास में बैठे-बैठे कभी अपने साथियों के तो कभी टीचर्स के भी कार्टून व स्केच बनाते। कभी कॉपी के पन्नों में, तो कभी ब्लैक बोर्ड पर। उनके टीचर्स नन्हें कलाकार सुधीर को कभी डाँटते नहीं थे बल्कि हमेशा उसे प्रोत्साहित ही करते थे।

सुधीर ने कार्टून बनाने का कोई प्रशिक्षण नहीं लिया। जन्म जात प्रतिभा, रुचि, लगन व आत्म विश्वास से बालक सुधीर की कला में दिनोंदिन निखर आता गया। सुधीर को कार्टूनिस्ट बनाने में घर परिवार के साथ हमारी जन्मभूमि गोस्वामी चौक, बीकानेर के सांस्कृतिक व साहित्यिक माहौल का भी पूरा असर रहा है क्योंकि उस दौर में बच्चों में कार्टून, लेखन, पेन्टिंग व संगीत का जादू जमकर छाया हुआ था।

बचपन में सुधीर को टाकीज में फिल्में देखने का बेहद शौक था। सुधीर के पास एक प्रोजेक्टर था जो उन्होंने अपने बाबूजी के साथ मिलकर बनाया था। फिल्म की रील लगाकर वे अपने हाथ से चलाते थे।

घर की दीवारें पर्दे का काम करतीं और आवाज देने का काम वे खुद ही पूरा करते। बचपन में बालक सुधीर प्राय: सोचा करते थे कि बड़े होकर थियेटर का गेटकीपर ही बनना चाहिये। पूरे दिन बिना टिकिट मजे से फिल्में देखो। ये बात सुधीर मजाकिया अन्दाज में अपने हर इन्टरव्यू में कहा करते थे।

नौ दस साल की उम्र में ही सुधीर ने कार्टून बनाकर अखबारों में डाक से भेजने शुरू किये। कुछ वापिस आये। सन 1970 में सुधीर मात्र दस साल के थे तब उनका पहला कार्टून जब दैनिक हिन्दुस्तान में छपा तो पूरे परिवार, स्कूल के टीचर्स व मोहल्ले में एक उत्सव का माहौल था। सुधीर अखबार की दस प्रतियाँ खरीदकर लाये। पहली बार अपना नाम व सिगनेचर देख कर सुधीर को बहुत खुशी हुई। दो सप्ताह में लगातार सुधीर के पाँच कार्टून छपे। करीब दो महिने बाद पच्चीस रुपये का मनी आर्डर आया। सन् 1970 के उस दौर में एक छोटे से बच्चे के लिये पच्चीस रुपये बहुत बड़ी रकम थी। सुधीर ने एक धूप का चश्मा खरीदा और चश्मा लगाकर टाकीज में पूरी फिल्म देखी 'झुक गया आसमान'। बचपन तो मस्त मौला बचपन ही होता है। बचपन से ही सुधीर में जबरदस्त सेंस ऑफ ह्यूमर था। एक बार सुधीर ने कार्टूनिस्ट आबिद सुरती को पत्र लिखा कि आपके सभी कार्टून प्रोफाइल में क्यों होते हैं? सभी कार्टूनों में पूरा फेस क्यों नहीं दिखता? पत्र का उत्तर आबिद सुरती जी ने दिया और उसके बाद से ढब्बूजी का चेहरा पूरा बनाना शुरू कर दिया। ये छोटी-छोटी बातें सुधीर की विलक्षण बुद्धि व दूरदर्शिता को दर्शाती है।

सुधीर ने बचपन से ही बड़े सपने देखे। जो छोटी सी उम्र में उसने पूरे भी किये। स्कूल, कॉलेज टाइम में भी सुधीर पढ़ाई के साथ कार्टून बनाना और प्रेस के काम-काज में बाबू जी के साथ पूरी मदद करते थे। बचपन में ही उसको मैंने बड़ा होते देखा, पूरी जिम्मदारियों को उठाने का बोझ। उसमें जुनून, पैशन था अपनी मंजिल हासिल करने का। बी.एस. सी. करने के बाद सुधीर ने मुम्बई में टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप ज्वाइन किया। वहाँ से दिल्ली आने के बाद सुधीर ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। कार्टून के अलावा सुधीर का कार्यक्षेत्र का दायरा बढ़ता ही गया। टाइम्स ऑफइंडिया ग्रुप के बाद लंबे समय तक काम करने के बाद सुधीर तैलंग हिंदी से अंग्रेजी पत्रकारिता में आकर हिन्दुस्तान टाइम्स और बाद में द एशियन एज से जुड़ गये।

सुधीर को मैंने कभी आराम करते नहीं देखा। काम के प्रति समर्पण की भावना जमकर थी उसमें। कार्टून बनाने से पहले वे चार-पाँच घंटे अखबार पढ़ते थे। किताबें पढ़ने के अलावा उन्हें संगीत का भी शौक रहा है। अन्नू कपूर के साथ होली स्पेशल अन्ताक्षरी में सुधीर ने जमकर मस्ती से गाने गाये। राजस्थानी लोक गीत 'केसरिया बालम आओ नी पधारो म्हारे देश' सुधीर भाई का पंसदीदा गीत रहा है। जो वे ज्यादातर कार्यक्रमों में सुनाते रहे। सुधीर की आदत थी कि जो मन में ठान ले वो उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। सुधीर काम को कभी बोझ मान कर नहीं करते थे। बल्कि हर काम को तनाव मुक्त होकर, पूरे जोश से, मन लगाकर, हँसते हुये करते थे। बीच में कई बार मुश्किलें आईं पर वे रुके नहीं। कार्टून बनाने के बाद ज्यादातर लोगों की प्रतिक्रिया सकारात्मक होती थी। लालकृष्ण अडवानी जी, अटल बिहारी वाजपेयी खुद अपने कार्टून बनाने को कहते थे। हाँ कई बार विरोध भी झेला। पर सुधीर अपने उसूलों के साथ कभी समझौता नहीं करते थे।

सुधीर टीवी कार्यक्रमों में भी हमेशा दिखाई देते थे। कोई भी बहस का मुद्दा हो या चुनाव का नतीजा या विश्लेषण सुधीर खुलकर बोलते। कार्टून के अलावा सुधीर ने डाक्यूमेन्टरी फिल्में भी बनाई दूरदर्शन के लिये।

सुधीर की कार्टून प्रदर्शनी लन्दन, फ्रांस व जर्मनी में बेहद सराही गई। कार्टून, स्केच बनाकर व माडलिंग के जरिये जो पैसे आते उसे चेरिटी संस्थाओं को मदद करते। भोपाल गैस पीड़ितों के लिये सुधीर तैलंग ने आन द स्पॉट खड़े होकर लोगों के कैरिकेचर बनाकर जो फंड इकट्ठा हुआ उसे मदद के लिये दे दिया। राजस्थान सूखा पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करते हुये एक लाख रुपये सूखा पीड़ितों को दिये। कारगिल सैनिकों की मदद के साथ कपिल देव का कैरिकेचर नीलामी में आये 70 हजार रुपये बच्चों की संस्था में दिये।

दिल्ली में रहकर भी वे मन से बीकानेर से हमेशा जुड़े रहे। फोन में गोस्वामी चौक व पूरे बीकानेर के हमेशा हाल-चाल पूछते। जब भी किसी को मदद की जरूरत होती तो वे फौरन मदद करते। बीकानेर को बी श्रेणी का दर्जा दिलाने में रामा गोस्वामी के साथ वे लगातार सक्रिय रहे। साथ ही मीटर गेज से ब्राड गेज में परिवर्तन के समय बन्द रेल सेवा को शुरू करवाने में उन्होंने लगातार बेहद प्रयास किया। जगह जगह दिल्ली में ऊँट पर सवार तत्कालीन रेल मंत्री ममता बनर्जी के पोस्टर लगवाये।

मुझे आज भी याद है सन् 2004 में सुधीर तैलंग को जब पद्मश्री सम्मान मिला था तब पूरे गोस्वामी चौक, बीकानेर में एक उत्सव का माहौल था। जगह-जगह से लोगों के बधाई संदेश, फोन आ रहे थे। अखबार, मीडिया वाले इन्टरव्यू कर रहे थे। छोटी सी उम्र में तमाम उपलब्धियों के लिये सुधीर की मेहनत लगन इच्छा शक्ति को कहा जा सकता है। उनका मानना था कि जिद करके आसमान को भी छुआ जा सकता है। सफलता कभी शॉर्टकट से नहीं मिलती। बहुमुखी प्रतिभा के धनी सुधीर तैलंग कार्टून के अलावा टी. वी. कार्यक्रमों व किताबों के लिये भी पहचाने जाते हैं। उन्होंने दूरदर्शन के नेशनल चैनल के लिये वृत्त चित्र, 10 एनीमेशन फिल्में, व टी . वी. शोज का निमार्ण किया। फिल्म के जादू ने सुधीर को बचपन से ही प्रेरित किया। वे कार्टूनिंग को अपने आप में एक लघु स्थिर सिनेमा मानते थे। सुधीर कार्टून के पितामह शंकर, अबू, मारियो व सेमुअल से प्रभावित रहे हैं। उन पर चार भागों में फिल्म भी दूरदर्शन के लिये तैयार की।

सुधीर तैलंग की नेताओं, अभिनेताओं, पत्रकारों व मीडिया की बड़ी-बड़ी हस्तियों से बेहद आत्मीयता के रिश्ते थे, उतनी ही आत्मीयता उनकी साधारण लोगों से भी। कालोनी का गार्ड हो या रिक्शा वाले या सब्जी वाले सुधीर सबसे खुद हाल-चाल पूछते, मदद करते। सुधीर का मिलनसार व्यक्तित्व ऐसा था कि हर किसी को अपना बना लेता था। रिश्तों की कद्र करना वे बखूबी जानते थे। किसी ऐसे जिन्दादिल मस्तमौला जिसके दिन की ही शुरुआत सुबह उठते ही लोगों के चेहरे में अपने कार्टून के जरिये मुस्कान लाने की होती थी वह अचानक यूँ हमें छोड़ कर चला जायेगा, ये तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था। सुधीर कैंसर जैसी असाध्य बीमारी के दौरान भी हँसते हुए, मजाक करते हुये दिखते तो सभी को बेहद आश्चर्य होता। वे बहुत हिम्मती थे। ब्रेन ट्यूमर के आपरेशन के समय भी सुधीर ने डॉक्टर से हँसते हुये कहा था, आप मेरे दिमाग से ट्यूमर को तो निकाल सकते हैं पर ह्यूमर को नहीं। 6 फरवरी 2016 को मात्र 55 साल की उम्र में ही सुधीर तैलंग ने दुनिया को अलविदा कह दिया। आर.के. लक्ष्मण के बाद देश के चर्चित व बेहद लोकप्रिय युवा कार्टूनिस्ट सुधीर तैलंग को कैंसर ने ही भले ही पराजित कर दिया हो लेकिन उनके कार्टून हमेशा सबके चेहरे पर मुस्कुराहट बिखेरते रहेंगे। हम सबको हँसाते रहेंगे, गुदगुदाते रहेंगे।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9407124018

डॉ. रामनिवास 'मानव'

वे नहीं रहे

वे नहीं रहे,
कल जिनके सिर पर ताज
और हाथ में था राजदंड,
वे आज नहीं रहे।
वे भी आज नहीं रहे,
जिनके एक हाथ में रहती थी सुरा
और रहता था दूसरा
साकी के कटिबंध पर।
रहे वे भी नहीं,
जिनके हाथ सदा रहते थे तंग
और पेट खाली, बेढंग,
आज वे भी नहीं रहे।

माना कि सब अलग-अलग जिये,
पर एक ही मार्ग से थे आये
और एक ही ढंग से गये।

नहीं रहेंगे,
कल उन्हीं की तरह
हम भी नहीं रहेंगे,
जो कल थे, आज नहीं रहे।
मित्रो, यही वास्तविक तथ्य है
कि जीवन है नश्वर,
और मृत्यु परम सत्य है।

मैं, मंच और पर्दा

मैं पर्दे के आगे रहूँ या पीछे,
कोई फर्क नहीं पड़ेगा मुझे,
क्योंकि मैं न अभिनय जानता हूँ
और न ही निर्देशन।
यहाँ वही है सफल,
जो पारंगत है इनमें से किसी एक
या फिर दोनों कलाओं में।
ऐसे में बचती है
मेरे लिए एक ही भूमिका-
दर्शक, सिर्फ दर्शक की।
मैं देखकर अभिनेता का अभिनय
उसके साथ हँसूँ या रोऊँ?
या फिर निर्देशक के निर्देशन को सराहूँ,
और बजाऊँ उसके लिए तालियाँ।

जहाँ मंच पर चल रहा हो नाटक,
वहाँ कुछ भी नहीं होता दर्शक का।
बँधे होते हैं उसके हाथ
अभिनेता या निर्देशक के साथ।

उसे करनी होती है प्रतीक्षा
पर्दा उठने या गिरने की,
अभिनेताओं के आने और जाने की,
रोने और गाने की,
ताकि बजा सके वह तालियाँ
और बजाता रहे पर्दा गिरने तक।

नन्हीं चिड़िया

दिन-भर फु दक-फु दककर
दाना चुगती, खेलती रहती है
नन्हीं चिड़िया।
दाना, खेल, फिर दाना।
और चलता रहता है यूँ ही
दाने और खेल क्रम
दिन-भर, जीवन-भर।

समय आने पर
तिनका-तिनका जोड़-जोड़कर
घोंसला बनाती है नन्हीं चिड़िया।
फिर अंडे देती है,
अंडों को सेती है;
बच्चे निकलने पर
उन्हें चुग्गा भी खिलाती है,
दाना-दुनका चुनकर।

बड़े होकर
जब उड़ जाते हैं बच्चे,
लौट आती है नन्हीं चिड़िया
अपनी उसी दिनचर्या में,
पहले की ही तरह-
जो कुछ हुआ, सब भूलकर।

लेकिन पक्के घर नहीं बनाती
कभी नन्हीं चिड़िया।
दाना-दुनका जोड़-जोड़कर
घर भी नहीं भरती।
और तभी तो जीने के लिए
जीने से पहले नहीं मरती।
नन्हीं चिड़िया
खेल समझती है जीवन को,
और खेल-खेल में जीती है
जीवन को जीवन-भर।

सम्पर्क : नारनौल (हरियाणा)
मो. 8053545632.

सुषमा गजापुरे

नदी मर रही है

नदी मर रही है...
देखे हैं क्या तुमने उसके टूटे तटबंध
सिकुड़ती जैसे अपने आप में सिमट
प्रकृति में हस्तक्षेप करते
मानवीकरण से डर रही है
हाँ, नदी मर रही है....

रात-रात सितारों की चकाचौंध
वह उथली धारा में सँभालती है
चाँद का कटोरा तो अब पूरा
समाता नहीं उसकी हथेली में
सिकुड़ती देह कौन देखता
धारा का शेष बचा जल
आँखों में भर रही है
हाँ, नदी मर रही है...

तटरक्षक वृक्ष सखा थे उसके
निर्झर बहना था चाह उसकी
रोक-रोक रास्ता नदी का
धाराएँ सिमटी सकुचाईं
पंछी की प्यास बढ़ गई
मछलियों ने भी आँखें चुराईं
अस्तित्व पर छाए हैं बादल
वेदना का हाहाकार कर रही है
हाँ, नदी मर रही है...

युगल नहीं आते उसके तीरे
जो रेत पर पाँव नंगे चलते
पैर डाल कर अपने जल में
प्रणय हिंडोले में झूलते
पथरीली देह किसे भाती है
आशा के कुछ पुष्प निर्जल
हथेली पर धर रही है
हाँ, सचमुच नदी मर रही है...

झूठ के सहारे

झूठ के सहारे आखिर
कितनी दूरी पार करोगे
सच-सच कहो रे मनवा!
क्या ऐसे जीवन को सार कहोगे?

देने में जो सुख मिलता
उसका कोई मोल नहीं
तृप्त नैनों से जो कह दे
ऐसे सुंदर बोल नहीं
परोपकार में है उत्तमता
क्या ऐसे त्याग को हार कहोगे?

मीठे वचन मुँह से बोले
पीछे-पीछे जो घात लगाएँ
सच्चाई से अंतर रख कर
झूठ-कपट से हाथ मिलाएँ
प्रेम-बन्ध में गाँठ लगी हो
क्या इस डोर को प्यार कहोगे?

स्वार्थ भरे हों जो रिश्ते
विश्वास-समर्पण जहाँ नहीं
अनैतिकता व्यवहार में हो
मानवता का वहाँ वास नहीं
जाति-धर्म परिचय हो जब
क्या इसे सुख का संसार कहोगे?

सुबह होने का अर्थ

यह जो सुबह की मखमली नर्म धूप है न... !
नए दिन के स्वागत में बड़ी प्रसन्नचित्त होती है
यही तो जीवन को जीने के आयाम नित देती है
सृष्टि को जीवन का सजीव प्रमाण देती है
ईश्वर की रचना को अद्भुत उपमान देती है
रात भर जागे चंद्रमा को भी आराम देती है...

ये जो सुबह की कोमल मखमली किरणें हैं न... !
अहसास के झरोखों को हौले-से खोल देती हैं
भोर की शीतलता में जरा-सा ताप उड़ेल देती हैं
पंछियों के कलरव संग प्रार्थनाएँ बोल देती हैं
सुबह की चाय में अदरक का स्वाद घोल देती है

ये जो सुबह की नर्म-गर्म ठंड की छुअन है न... !
बीते दिन की अलसाई थकान उड़ा ले जाती है
देह के पोर-पोर में ऊर्जा की ऊष्मा भर आती है
कण-कण में प्रकाश का शुभ-संदेश पहुँचाती है
सुबह के धूप-छाँव की सनातन कथा बाँचती है....

यह जो प्रतिदिन की नूतन-पावन सुबह है न.. !
सृष्टि को शुभकामनाओं का अनुपम शगुन देती है...

सम्पर्क : पुणे (महाराष्ट्र)
मो. 799030457

डॉ. आर.एस. खरे

ऑनलाइन श्रद्धांजलि

मिस्टर धनराज नहीं रहे। कोरोना से जंग हार गए। वे अपने उद्योगपति बेटे के पास दिल्ली गए थे। जाने के पहले मुझसे मिलने आए थे। उम्र का तकाजा देकर मैंने उन्हें कोरोना से आगाह किया तो बोले–'शर्मा जी, मैं योग गुरु बाबा जी का चेला हूँ। रोज उनका बनाया काढ़ा पीता हूँ और नाक में तेल की बूँदे डालता हूँ। बाबा जी की कोरोना किट सदैव मेरे साथ चलती है।'

मैंने कहा– 'धनराज जी, फिर भी सावधानी में ही समझदारी है। बहुत जरूरी न हो तो कुछ दिनों के लिए दिल्ली जाना टाल दीजिए। अभी कोविड की दूसरी लहर वहाँ पीक पर है। अस्पतालों में ऑक्सीजन और रेमडेसवियर इंजेक्शन की मारामारी है।' 'अरे शर्मा जी, पैसे वालों के लिए कहीं कोई कमी नहीं। मेरा बेटा वनराज बता रहा था कि जरूरत पड़ने पर 'खान चाचा होटल' से ब्लैक में ऑक्सीजन सिलेंडर मिल जाते हैं, और रेमडेसवियर इंजेक्शन तो प्राइवेट अस्पताल का स्टोर इंचार्ज चौगुनी कीमत लेकर घर पहुँचा देता है। अपने भोपाल के हमीदिया अस्पताल से चोरी हुए रेमडेसवियर भी तो दिल्ली में ही मिले थे।'

'धनराज जी, वह तो ठीक है, पर पेशेंट को भर्ती होने के लिए खाली बेड भी तो मिलना चाहिए। वहाँ तो खाली बेड ही नहीं मिल रहे।'

'शर्मा जी, वीआईपी के लिए सभी बड़े अस्पताल कुछ बेड रिजर्व रखते हैं। आँकड़ों में दिखाने के लिए कुछ डमी मरीजों को कोरोना बेड आवंटित दिखाते हैं और बड़े आसामी के आते ही उसे डिस्चार्ज कर इसे बेड दे देते हैं।'

पुत्र मोह के वशीभूत हो वे हवाई मार्ग से दिल्ली पहुँच गए। चौथे दिन फोन पर वे हाँफ रहे थे– 'शर्मा जी, आपकी सलाह न मानकर बड़ी गलती कर दी। हालात यहाँ बद से बदतर हैं। वनराज दो दिन से अस्पताल में खाली बेड की कोशिश कर रहा है। आश्वासन के अलावा कुछ नहीं मिल रहा। राज्य और केंद्र कोर्ट के सामने कुत्ते–बिल्ली की तरह लड़ रहे हैं। बेटा दिल्ली के स्वास्थ्य मंत्री से भी मिला। चुनाव में दिये चंदे का हवाला भी दिया। पर मंत्री कहता है कि वह ऐसे समय दिल्ली वाले अपने वोटर को पहले बेड दिलाएगा, भोपाल वाले को नहीं। अब बताइए 'एक देश–एक आत्मा' के नारे का क्या करें?'

अगले दिन धनराज जी थोड़ा खुश नजर आए- 'शर्मा जी, तगड़े डोनेशन से अच्छे अस्पताल में बेड मिल गया है। अब जल्दी ही ठीक हो कर वापस आऊँगा।'

'अच्छी बात है, धनराज जी। पर निगाह रखिएगा कि नकली रेमडेसवियर इंजेक्शन न लगे।'

दो दिन बाद खबर आई कि एक प्रतिष्ठित निजी चिकित्सालय में ऑक्सीजन की कमी से 25 कोरोना मरीजों की मौत हो गई। मैं चिंता में पड़ गया। वहीं तो धनराज जी भी एडमिट थे।

वनराज से बड़ी मुश्किल से संपर्क हुआ तो वह फूट-फूट कर रोने लगा। उन अभागे 25 में धनराज जी भी थे।

त्रयोदशी के एक दिन पहले वनराज का फोन आया। उत्साहित होकर बोला-'अंकल, कल पापा की त्रयोदशी पर ऑनलाइन श्रद्धांजलि का कार्यक्रम रखा है। सायं 4:00 से 5:00 तक। जूम-मीटिंग के लिए आईडी और पासवर्ड भेज रहा हूँ। एक बहुत अच्छे मॉडरेटर को हायर किया है।

एक-एक मिनट का समय ही श्रद्धांजलि व्यक्त करने के लिए रहेगा। रिश्तेदारों तथा पापा के दोस्तों को मिलाकर 180 लोग हो गए हैं।

यदि आप को जूम डाउनलोड करने में कठिनाई हो तो पड़ोस से किसी स्टूडेंट को बुला लीजिएगा। आप बुजुर्ग लोगों को अभी तक नई तकनीकी की पकड़ नहीं है। पर छोटे से छोटा विद्यार्थी भी इन सब में एक्सपर्ट है। अंकल फोन रखता हूँ। अभी और लोगों को भी इनवाइट करना है।'

मैं सोचने लगा श्रद्धांजलि के कार्यक्रम में मॉडरेटर का क्या काम? फिर अपने मन को सांत्वना दी, कि हो सकता है, बड़े शहरों में यह नया फैशन चल रहा हो। यह भी इवेंट मैनेजमेंट का हिस्सा बन गया हो।

अगले दिन लैपटॉप पर ऑनलाइन श्रद्धांजलि प्रोग्राम से जुड़ गया। स्क्रीन पर स्वर्गीय धनराज जी की एक फोटो फूलों से सजी टेबल पर रखी थी। नीचे गद्दों पर श्वेत वस्त्रों में परिवार के सदस्य बैठे थे। पहले भजन मंडली ने एक सुमधुर भजन गाया। संचालन कर रहे मॉडरेटर ने धनराज जी के रिश्तेदारों का परिचय कराया। फिर श्रद्धांजलि देने के लिए परिचय के साथ वक्ताओं के नाम पुकारने शुरू किए। मॉडरेटर जिसका नाम पुकारता वह माइक अनम्यूट कर बोलना शुरू कर देता। कुछ वक्ता सज धज कर तैयार होकर अपने-अपने घरों में बैठे थे, तो कुछ कैजुअल कपड़ों में बैठे थे। कुछ वक्ता बोलते-बोलते भावुक हो जाते। कुछ तो रोने भी लगते। कुछ धनराज से अपने बचपन की मित्रता का हवाला देते। तो कुछ नौकरी में साथ रहने का। जब कोई वक्ता समय से अधिक बोलता तो मॉडरेटर समय सीमा की याद दिलाता।

चंडीगढ़ के भाटिया जी ने तो हद ही कर दी, बोले - 'धनराज मेरा जिगरी यार था। हम लोग साथ बैठकर पीते तो पीते ही जाते। उसे रम पसंद थी और मुझे व्हिस्की। पी जी करने के बाद वह नौकरी में चला गया और मैं बिजनेस में आ गया। मेरे बेटे-बहू मेरा बड़ा ख्याल रखते हैं। बेटा मेडिकल स्टोर चलाता है और बहू वकालत करती है। मैंने बेटे से बोल रखा है कि लालच में पड़कर महँगे दामों में रेमडेसवियर नहीं बेचना।

उनके लगातार बोलते जाने से मॉडरेटर को हस्तक्षेप करना पड़ा- 'भाटिया जी हम समय सीमा

से बँधे हैं, और वक्ता बहुत हैं। कृपा करके अपनी श्रद्धांजलि जल्दी पूरी करें।'

भाटिया जी ने अपने दोनों पोते और पोतियों के बारे में बताना शुरू किया तो मॉडरेटर ने वनराज की ओर देखा और इशारा पाकर भाटिया जी को म्यूट कर दिया।

अगले वक्ता भोपाल से शास्त्री जी को पुकारा गया। शास्त्री जी ने पहले तो संस्कृत में अनेक श्लोक पढ़े, फिर जीवन मृत्यु के गूढ़ रहस्य के दर्शन की व्याख्या करने लगे। प्रवचन लंबा होते देख मॉडरेटर को पुनः आग्रह करना पड़ा और फिर वैसा ही वनराज का इशारा समझते ही उसने उनका माइक भी म्यूट करते हुए अगले वक्ता को आमंत्रित कर दिया।

बनारस और प्रयागराज के वक्ताओं ने तो धनराज जी के सिनेमा प्रेम का इतने विस्तार से विवरण दिया की शायद सिनेमा पर निबंध लिख रहे हो। फिर उन्होंने सन 60-70 के दशक की प्रमुख फिल्मों के हीरो हीरोइनों के बारे में बताना शुरू किया तो इस बार मॉडरेटर को थोड़े कठोर शब्दों में प्रार्थना करना पड़ी- 'वक्तागण यह ध्यान रखें कि वे स्वर्गीय धनराज जी को कोराना से हुए उनके आकस्मिक निधन पर श्रद्धांजलि देने हेतु सभा में बोल रहे हैं। 5:00 बज चुके हैं और अभी 130 वक्ता शेष हैं। अब अधिकतम हमें 20 मिनट में यह सभा समाप्त करना है। अतः अब हम सिर्फ परिवार के लोगों को ही बोलने का अवसर दे पाएँगे।

तभी स्क्रीन पर दिखाई दिया कि धनराज जी के अधिकांश मित्र भुनभुनाते और पैर पटकते हुए उठ कर चले गए।

मैं सोचने लगा कि अब जबकि ऑनलाइन श्रद्धांजलि का चलन बढ़ गया है तो वक्ताओं को प्रशिक्षित किया जाना जरूरी है कि उन्हें कब, कितना, कहाँ, क्या, कैसे बोलना है?

ओम शांति...

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
0755-2420130, 9827267006

डॉ. ममता चंद्रशेखर

वियतनामी नारियल पानी

जैसे ही हवाई जहाज ने हवा में उड़ान भरी। हौले-हौले धरती नीचे छूटने लगी और हम बादलों के नजदीक आने लगे। कुछ ही क्षणों में जहाज बादलों की बस्ती में जा पहुँचा। यहाँ पर मुझे बादल यूँ लगने लगे जैसे रुई के छोटे-बड़े ढेर हों। सुन्दर सलोने नीले आकाश के तले तैरते बादलों के समूह मनमोहक लग रहे हैं।

मुझे यह दृश्य भगवान शिव की उस तस्वीर से मिलता-जुलता लगने लगा जिसमें वे रुपहले बादलों के घिरे से दिखते हैं। आज से पहले मुझे वे दृश्य अकल्पनीय से प्रतीत होते थे लेकिन आज वे ही यथार्थ के गलियारे में खड़े दिख रहे हैं। हवाई जहाज की खिड़की से बाहर दिखाई देने वाला यह सुखद आश्चर्य से भरपूर दृश्य ईश्वर की अनंतता का बोध करता सा नजर आ रहा है।

जीवन की आधी पारी पूर्ण होने के उपरांत पहली बार मुझे बादलों की बस्ती में पहुँचने का अवसर मिला है। सब कुछ अनोखा सा प्रतीत हो रहा है। ऐसा लग रहा है कि एक-एक दृश्य को अपने सीने में हमेशा के लिए छुपा लूँ।

मैंने महसूस किया कि चारों ओर सन्नाटा है। शान्ति की चादर दूर-दूर तक पसरी हुई है। ऐसा लग रहा है मानो जहाज आसमान के सम्मान में ठहर सा गया है। न तो रेलगाड़ी की भाँति छुक-छुक की आवाज आ रही है और न ही कार की भाँति हल्के-फुलके धक्के लग रहे हैं।

सब ठीक तो है यह आश्वस्त करने के लिए मैंने उत्सुकतावश जहाज के अंदर की ओर अपनी गर्दन मोड़ी तो देखा मेरे इर्द-गिर्द सभी यात्री ऐसे बैठे हैं मानो सभी ने शान्ति की कोई घुट्टी पी ली हो। कोई यात्री ऊँघ रहा है। कोई किताब पढ़ रहा है। कोई अपने ही विचारों में खोया हुआ है।

फिर बगल में बैठी अपनी बेटी हर्षिता की ओर देखा तो पाया कि वह मुझे ही देख रही है। मैंने उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। बदले में वह भी मुस्कुरा दी। मैंने अपना मुँह उसके कानों के पास सटा दिया फिर धीरे से कहा ''थैन्क यू, बेटी''

किसलिए? वह आश्चर्य मिश्रित स्वर में पूछने लगी।

''बादलों की बस्ती में लाने के लिए।''

''ओह माँ।'' कहकर उसने मुझे एक मीठी सी मुस्कान दी।

उसकी मुस्कान को दिल के अंदर समेटकर मैं फिर से खिड़की के बाहर निहारने लगी। बादल अब भी ठहरे-ठहरे से हैं। मानो वे मुझे देखने के लिए रुक से गये हैं।

मैंने कहीं पर पढ़ा था कि हवाई जहाज 32 हजार मीटर की ऊँचाई पर जाकर उड़ता है। शायद यह आसमान का वही आँगन है जहाँ पर धरती से आयी हवाई जहाज और आसमाँ में विचरण करते बादलों के बीच आपसी गुफ्तगू होती है। दोनों एक-दूसरे में गले मिलकर आनंद में लीन हो जाते हैं। अपने-अपने संसार की बातों को साँझा करते हैं।

इस अद्भुत संसार में आकर मैं सोचने लगी ''काश मेरे अभिभावकों ने भी बादलों की यह सैर की होती। सोचते-सोचते मेरी आँखें बादलों के एक समूह में जा ठहरी। अनायास ही मेरे सामने मेरे अभिभावकों का एक भव्य चेहरा दिखाई देने लगा। वे मुझे देखकर बादलों के पीछे से मुस्कुराने लगे। उन्हें मुस्कुराते देख मैं भी मुस्कुरा दी।

तभी 'एक्सक्यूज मी।' की ध्वनि मेरे कान में पड़ी और मैंने चौक कर अपनी दाहिनी ओर देखा। मेरी बेटी हर्षिता नींद के आगोश में समाई हुई है और सामने एक सुन्दर सी लड़की प्रसन्न मुद्रा में खड़ी मुझे ही देख रही है।

उसने अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाते हुए मुझे एक बंद पैकेट थमा दिया।

फिर उसने बेटी की ओर इशारा किया। मैंने बेटी को हिलाते हुए जगाया और उसे भी एक पैकेट दिया। बंद पैकेट खोलते ही हमें उसमें ब्रेड सेन्डविच मिले। हम लोगों ने बड़े ही आनंद से उसे ग्रहण किया। पास में बैठी भाभी पहली बार बोली ''अरे, उड़ते हुए कुछ खाने की बात ही कुछ और है।''

उनसे हर्षिता ने तुरंत इशारे से कहा ''धीरे।''

हवाई जहाज की यह यात्रा मुझे हर पल रोमांचित कर रही है। मैं सोचने लगी कि ''हर किसी को एक बार जरूर हवाई जहाज का सफर करना चाहिए।''

खैर।

वियतनाम की भूमि पर पाँव रखते ही हिन्दी रूठी-रूठी सी लगने लगी क्योंकि वियतनामी भाषा हमारे गिर्द-गिर्द मँडराने लगी। विदेशी भाषा से तालमेल बिठाने के लिए मेरी बिटिया रानी अंग्रेजी के बाण चलाने लगी परन्तु हवाई अड्डे के बाहर तो यह बाण भी निष्क्रिय से हो गये हैं। अत: सभी ने गूगल महाराज की शरण में जाकर 'मोबाइल में ट्रांसलेटर' का दामन थाम लिया।

हम सभी लोग एक बड़ी सी कार में सवार होकर अपनी आरक्षित होटल की ओर चल पड़े। स्थानीय निवासियों को देखकर मैंने महसूस किया कि भले ही यहाँ की भाषा व पहनावा अलग है लेकिन भाव एक समान हैं। आखिर क्यों न हो? इस धरती में निवासरत सभी मानव, मानव ही तो है। सभी दो हाथ दो पाँव हैं। फिर चाहे वह भारत का हो या वियतनाम का।

दूसरे हम लोग यहाँ के स्थानीय दर्शनीय स्थलों में एक ''टेम्पल ऑफ लिट्रेचर'' देखने गये। नाम सुनकर मुझे लगा वहाँ पर कोई बड़ा-सा ग्रंथालय होगा लेकिन जाकर पता चला कि वहाँ पर एक बड़ा सा बंद बाग है। जिसमें स्थित मंदिरों में कन्फ्यूशियस की कतिपय मूर्तियाँ हैं। इतिहास बताता है

कि सन् 1070 में इस स्थान पर वियतनाम का पहला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया था जो कन्फ्यूशियस को समर्पित था। कन्फ्यूशियस की यहाँ पूजा की जाती है।

उसी रात हम लोग रात्रिकालीन भोजन की तलाश में हनोई की सँकरी गलियों से गुजरे। सड़क के दोनों ओर सैकड़ों की संख्या में युवक-युवतियों को शराब की चुस्कियों के साथ-साथ सिगरेट, सिगार व हुक्का के धुयें के छल्लों के बीच खोये हुए देखकर मेरा मन बैठा जा रहा है। पश्चात्य सभ्यता में लिपटे उनके आचरण कन्फ्यूशियस के विचारों को रौंदते से नजर आये।

मैंने एक लंबी साँस भरकर मैंने अपनी बेटी की ओर देखा। फिर अपनी भतीजी और उसकी सहेली की ओर देखा। वे यहाँ-वहाँ देखने में मग्न हैं।

चलते-चलते अपनी बेटी के पास जाकर धीरे से मैंने पूछा ''हम यहाँ क्यों आये हैं?

उसने बड़े ही भोलेपन से उत्तर दिया ''माँ अपने होटल वाले ने बताया था कि यहाँ पर हमें बेहतर रेस्टोरेन्ट मिलेंगे।''

उसकी उत्तर सुनकर मैंने धीरे से कहा ''ओह।''

इर्द-गिर्द के रेस्टोरेंट में सुअर व पाड़े के माँस से बने व्यजंनों के चित्र बने हुए हैं। समुद्री तट पर बसा होने के कारण शायद यहाँ पर झींगे, केकड़े, ऑक्टोपस, मेढ़क व समुद्री मछलियाँ ही खाये जाते हैं। शाकाहारी भोजन ढूँढ़ना टेढ़ी खीर है। बड़ी मुश्किल से एक जगह वेज नूडल्स मिल गये। लेकिन उसमें समाई मछली की गंध मन को विचलित कर रही है।

जब मेरे से रहा नहीं गया तो मैंने भाभी से कहा ''सीफूड खाने वालों के लिए वियतनाम बहुत अच्छा है।''

भाभी ने नाक सिकोड़कर कहा ''हूउउउउ।''

दूसरे दिन हम लोग हवाई जहाज से दानंग गये। यह एक समुद्री इलाका है। यहाँ की आबोहवा हनोई से बेहतर है। यहाँ पर जनसंख्या घनत्व अपेक्षाकृत कम है। यह स्थान पर्यटकों के मुताबिक विकसित किया गया है। रास्ते में सड़क के एक ओर समंदर के किनारे खड़े कतारबद्ध नारियल के वृक्ष व सड़क की दूसरी ओर खड़ी आधुनिक गगनचुंबी इमारतें मन को मोह रही हैं।

जैसे ही हम लोग अपने पाँच सितारा होटल में पहुँचे बड़ा सुकून मिला। हर कोना सुसज्जित है। कार्यरत कर्मचारियों का व्यवहार शब्दों की कोमल छाया से आच्छादित है। उसके चेहरे का सौंदर्य व मुस्कान भी आत्मा का सुखद अनुभूति की ओर ले जा रहे हैं।

सुबह-सुबह हम लोग मार्बल केव गये। संगमरमर की विशाल गुफाएँ अद्भुत हैं। गुफा के अंदर कन्फ्यूशियस की विविध मूर्तियों के पास जल रही अगरबत्ती के सुगंध समूचे वातावरण को मंदमुग्ध कर रही है। यात्रीगण यहाँ की तस्वीरों को अपने कैमरों में कैद कर सुकून की अनुभूति कर रहे हैं। यहाँ के स्थानीय बाजार में संगमरमर की कलाकृतियाँ देखकर मन बाग-बाग हो गया।

यहाँ के अन्य दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते-करते समय खुश्बू की भाँति उड़ने लगा। अंततः वह सांझ आ गई जब कि हमें वियतनाम को अलविदा कहना है। हम सभी अपनी-अपनी यादों की गठरी में ज्यादा से ज्यादा लम्हें समेटने में मशरूफ हो गये।

अपनी होटल के ठीक सामने उमड़ते-घुमड़ते समंदर के नजदीक जाकर हम सब अद्भुत नजारों को निहारने लगे। संध्याकाल होने से यहाँ काफी चहलपहल है। हम सभी से समूह में कुछ यादगार फोटो खींचे। फिर एक-दूसरे के फोटो खींचने लगे। इसके बाद सभी लोग सेल्फी मोढ़ पर आ गये। सभी बहुत आनंदित है।

थोड़े समय के उपरांत मैं और भाभी वहीं समंदर की रेत पर पाँव फैलाकर बैठे गये। पास में ही तीनों बेटियाँ आपस में फोटो खींच रही थीं। वे कभी समंदर की लहरों के संग तो कभी किनारे पर आकर हंस रही है। उनकी खिलखिलाहट मन को सुकून दे रही है।

एकाएक भाभी कहने लगी ''दीदी कितना अच्छा लग रहा है इन्हें ऐसे हँसते-खेलते देखकर।''

''हाँ जी। ये हमारी बेटियाँ मस्ती के साथ-साथ जिम्मेदारी का बोध भी रखती हैं।''

''हाँ। सही है। कहाँ? कितना? कैसे? खर्च करना है। यह सारी जिम्मेदारी इन तीनों ने ही तो उठाई है।'' भाभी से गंभीर स्वर में कहा।

''सही है। हमें इनकी काबिलियत पर भरोसा था, तभी तो इन के हाथों में इस यात्रा की बागडोर थमा दी थी।'' मैंने बड़ी संयमित आवाज में कहा।

''अरे इनके कारण हमारी यात्रा मजे में है। वर्ना हम वियतनामी मुद्रा को भारतीय मुद्रा में बदलते-बदलते ही परेशान हो जाते। शुक्र है इन बच्चियों के कारण हमें इस झमेले में नहीं पड़ना।''

हाँ, सही है। हम दोनों मस्त है।'' मैंने थोड़ा ठहरकर हंसते हुए कहा ''एक बात और।''

''क्या?

''हमारे पास चालू मोबाइल भी नहीं हैं। फिर भी हम खुश हैं।''

वह हँसते हुए बोली ''मस्त क्यों नहीं रहेंगे। मोबाइल में पड़ी सिम बंद है तो क्या? मेरी फोटो निकालने के लिए आपके हाथ में मोबाइल कैमरा है और आपके लिए मेरे हाथ में मोबाइल कैमरा है।''

इस बात पर हम दोनों एक साथ जोर से हँस दिए। हँसते हुए हम दोनों बिना किसी फ्रिक के वहीं रेत पर लेट गये। समंदर की लहरों का संगीत हमारे कानों में पड़ने लगा। साँझ की स्याही ने धरती को अपने आगोश में ले लिया। आँखें दूर आसमान पर जाकर ठहर गईं। टिमटिमाते तारे मन को भा रहे हैं।

रेत पर पड़े हुए मैंने दूर आसमाँ की ओर देखते हुए कहा ''आज के मोबाइल युग में हमने कभी सोचा भी नहीं था कि हम चार दिनों तक मोबाइल के बिना रह सकेंगे परन्तु...।''

मेरे वाक्य पूरे होने के पहले ही वह भाभी जी बीच में ही बड़े ही जोशिले स्वर में बोल पड़ी ... .पर हम मोबाइल के बिना रह सके। मोबाइल पर निर्भर रहने की आदत भी छूमंतर हो गई। ओ ओ हुरररररर्रा।''

बच्चों की भाँति चहककर हम दोनों ने एक-दूसरे के हाथ में अपना हाथ मारा। फिर रेत पर धराशायी हो गये।

समुद्र किनारे बहती मदमस्त हवा के झोंकों में मन मदमस्त होकर झूमने लगा। थोड़ी देर तक

तो हम दोनों शान्त पड़े रहे। फिर जाने क्या सूझा कि हम दोनों अपने जमाने के फिल्मी गीत स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगे।

कुछ देर बाद एक विराम सा आया और मौन ने हम दोनों को अपने आगोश में ले लिया। हम दोनों बिना कुछ कहे सुने यूँ ही रेत पर पड़े रहे। मन की एकाग्रता सुकून की चादर ओढ़े पास खड़ी हैं तभी सेजल की आवाज सुकून को भेदते हुए कानों तक आ पहुँची ''अरे, आप लोग यहाँ लेटे हैं।'

अंकिता बोली ''आप लोगों का ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हम लोग तो चिन्ता में पड़ गये थे।''

हर्षिता बोली ''मम्मी अब जल्दी से चलो। अपन लेट हो रहे हैं।''

झट से रेत का दामन छोड़ हम दोनों उठ खड़े हुए। अपने कपड़ों में चिपकी रेत को झड़ाते हुए मेरी नजर समंदर पर पड़ी तो पाया वह बिहूना सा मुझे ही देख रहा है। मैंने मन ही मन उसे अलविदा कहा और फिर चल दी होटल की ओर।

तैयार होते हुए हर्षिता ने मुझसे कहा 'माँ कल हमें वापस चलना है। इसलिए आज अपन सभी एक लोकल मार्केट चलते हैं। वहीं पर खाना खाकर, थोड़ा बहुत खरीददारी कर लेंगे। आपको भी कुछ खरीदना हो खरीद देना।''

मैंने भाभी की ओर देखा तो वह हँसते हुए तपाक से कहने लगी ''तो ठीक है। हम लोग अपनी पसंद के हिसाब से खरीददारी करेंगे।''

''ठीक है।''

इस बार भाभी और मैंने भी कुछ दांगी अपने पर्स में रख ली। उनके बारे में बिना कुछ जाने समझे। सच तो यह था कि यह सब जानने का न तो हम दोनों के पास समय था और न ही इच्छाशक्ति।

झटपट तैयार होकर हम सब चल दिये होटल के काउन्टर की ओर। अपनी योजनानुसार हम सभी ने एक-एक सायकल ली। सायकल पर बैठते ही मेरा मन बावरा होकर मयूर की भाँति नाचने लगा। स्कूल के वह दिन याद आने लगे जब बिना किसी चिन्ता फिक्र के सायकल में बैठ पक्षी की भाँति उड़ती थी। सालों के बाद सायकल चलाकर आज ऐसा लग रहा है जैसे कि मैं उड़ रही हूँ। यह सुख अद्भुत है। मैंने कभी सोचा नहीं था कि स्कूल के उन दिनों की अनुभूति की पुनरावृत्ति होगी। मैं कभी अपने ख्यालों में गुम तो कभी यहाँ-वहाँ देखती हुई चली जा रही हूँ। मन परमपिता को धन्यवाद देने लगा।

अंततः वियतनाम की सड़कों पर चलते हुए कुछ ही देर में हम सब स्थानीय बाजार जा पहुँचे। यहाँ की अधिकांश वस्तुएँ मुझे भारत जैसी ही लगीं। इसलिए मैंने सोचा कि बेवजह सामान का वजन बढ़ाना ठीक नहीं है। हवाई यात्रा में 15 किलो से ज्यादा का वजन होने पर दिक्कत आ सकती है।''

कुछ सोचकर मैं नारियल पानी के ठेले की ओर बढ़ी। ठेले की मालकिन एक खूबसूरत वियतनामी महिला थी। मैंने उससे मुस्कुराते हुए इशारे से कहा ''एक नारियल पानी।

नारियल पानी का लुत्फ उठाने के उपरांत मैंने उससे पूछा ''हाउ मच।''

वह कड़क आवाज में हाथ की तीन अँगुलियाँ बताते हुए बोली ''थार्टी थाउजन्ट, , , , , , , , , ।''

उसकी बात सुनते ही मेरे मुँह से जोर से निकला ''क्या ''थार्टी थाउजन्ट, टटटटटटटटटट, , , , , , , , ,।'' और मेरे हाथ का नारियल धड़ाम से जमीं पर जा गिरा।

मेरी तेज आवाज सुनकर, पास में ही खरीददारी कर रही मेरी बेटी लगभग दौड़ते हुए मेरे पास आयी और झट से पूछने लगी ''क्या हो गया माँ?

''ये नारियल पानी के थरर्टी थाउजन्ट बता रही है।'' मैंने चितिंत स्वर में कहा। तब तक भाभी, उनकी बेटी सेजल व उसकी सहेली अंकिता भी आ गई।

मेरी बात सुनकर हर्षिता शान्त स्वर में कहा ''हाँ, माँ ये सही कह रही हैं।'

''क्या? थार्टी थाउजन्ट का एक नारियल?

''हाँ... लेकिन थार्टी थाउजन्ट रुपया नहीं ... .वह थार्टी थाउजन्ट डांगी माँग रही है।'

मेरे पास आकर भाभी बुदबुदाई ''डाँगी।''

सेजल बोल पडी ''हाँ। हमारे एक रुपया में इनके 272 डाँगी आते हैं। इसलिए वियतनाम की करेन्सी हजार से ही शुरू होती है।''

उन सबके संवाद सुनकर मेरा सिर घूमने लगा। मैंने झट से अपना पर्स खोला और उसमें से सारे नोट निकल कर हर्षिता को थमाते हुए कहा '' बेटी, ये सँभाल अपनी डांगी। मैंने तो अब पी लिया है 30 हजार का वियतनामी नारियल पानी।''

मेरी बात सुनकर भाभीजी जोर से हँस दी। उन्हें हँसता देखकर सभी हँस दिये। सभी को हँसता देखकर ठेले वाली वियमनामी महिला के होंठों पर भी हँसी की लहर दौड़ पड़ी।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)

प्रभा पारीक

इच्छायें

सदा हँसने खिलखिलाने वाले व्यक्ति आज शान्त लेटे थे, देखने से चेहरा ऐसा लग रहा था जैसे अभी ठहाका लगा देंगे। आज का ये वातावरण जमीन पर लेटे इस व्यक्तित्व व स्वभाव के विपरीत था। ये घटनाक्रम स्वयं उनके साथ नहीं हुआ होता तो इतने बोझिल वातावरण में भी रोहित सहाय जी को तो कुछ न कुछ सूझ ही जाता। किस्सों का भंडार जो भरा था उनके दिमाग में। कल शाम अचानक दिल के दौरे से हार मान गये रोहित जी इसलिये सारा वातावरण अत्यंन्त गमगीन था। सभी उनके बारे में अलग-अलग तरह की बातें कर रहे थे। यह तो सभी कह रहे थे।'' भले आदमी थे, जल्दी चले गये। ''अजी क्या रक्खा है इस दुनिया में जीने से''... अरे अभी तो रोहित साहब की जिम्मेदारी भी पूरी नहीं हुई,'' पड़ोसी भी कह रहे थे अजी आज तक कभी ऊँची आवाज नहीं सुनी सहाय जी की। सूर्यकांत जी अपने स्थान पर खड़े सबकी बातें ध्यान से सुन रहे थे। उनके लिये सारा समूह अन्जान था। सूर्यकांत जी जानते थे रोहित जी की सोच थी कि ''जिन्दगी एक कविता है गुनगुनाते रहिये, लाख मुश्किलें हैं पर मुस्कुराते रहिये।''

सूर्यकांत जी ने रोहित जी की पत्नी को आज ही देखा था। उनका परिचय रोहित सहाय जी से ही तो था। उनके बेटे भी जब छोटे थे तब एक दो बार पिता के साथ आये थे। यह समय किसी को अपना परिचय देने का भी नहीं था। एक तरफ खड़े सूर्यकांत जी एक दो बार आगे भी आये, किसी मदद के लिये, लेकिन उससे पहले उनके तथाकथित अपने काम को सँभाल चुके थे। सूर्यकांत जी को अपने हाथ में पकड़ा पैकिट अब बोझ लगने लगा था। अपनी भावनाओं के कारण ही तो ले आये थे वह उस पैकिट को अपने साथ, जानते थे आज भी परलोकवासी रोहित सहाय साहब को उनकी यह हरकत अच्छी नहीं लगेगी।

सूर्यकांत जी अपने मन का क्या करें। सहाय जी का बड़ा बेटा सब काम दौड़-दौड़ कर कर रहा था। आज अभी देखने से तो यही लग रहा था कि अच्छा खासा खाता-पीता परिवार था, रोहित सहाय जी का। वह स्वयं ठहरे स्वाभिमानी इंसान। कभी किसी की मदद स्वीकारी नहीं कुछ माँगा भी नहीं और कभी बेईमानी के बारे में भी नहीं सोचा। बस काम से काम। आज सूर्यकांत जी सोच रहे थे कि अपनी दुकान पर आने वाले ग्राहकों को जितनों को जानते थे सहाय जी उनमें सबसे जिन्दादिल, खुश-मिजाज इंसान थे।

आज सूर्यकांत जी को उनके बीते वर्ष याद आने लगे थे। रोहित सहाय नाम के यह व्यक्ति सारा सारा दिन संस्था के कामों मे लगे रहते, चाहत यही थी कि संस्था की प्रगति हो तो, उनकी भी कुछ तनख्वाह बढ़े और वह अपनी स्वयं की भी कुछ जरूरतों को पूरा कर सकें। यूँ तो घर का खर्चा व अन्य काम आराम से चल ही रहे थे। बस उनकी अपनी वर्षों से कुछ इच्छायें थीं। जिन्हें वह पूरा करना चाहते थे। जिसकी किसी को भी जानकारी नहीं थी। जानते थे सहायजी कि घर वाले इसे महँगा शोक कहेंगे। सूर्यकांत जी उनकी एक इच्छा तो इस लिये जान गये थे कि वह अकसर उनकी दुकान पर उस इच्छा को

पूरी करने के सपने, मन में दबाये आते रहते थे। आज के समय में यह इच्छा इतनी बड़ी नहीं थी कि पूरी करने के लिये इतना इंतजार करना पड़े। इच्छा की उपलब्धी का पता भी सूर्यकांत जी को सहाय साहब बता चुके थे पर तब वह नहीं जानते थे कि यह सब वह क्यूँ पूछ रहे हैं।

सहाय जी दिन भर काम करके थक कर चूर हो जाते, मन करता जल्दी से घर जायें और पत्नी के हाथ का गरम-गरम खाना खा कर सो जायें पर कार्यालय से सात बजे निकलने के बाद लोकल ट्रेन तक जाना, फिर घर के पास ट्रेन से उतर कर सुबह जेब में रखी सामान की सूचि को पूरा करते हुये रात नौ बजे वह घर पहुँचते। जब सूची में सामान की संख्या कम होती तब वह अपने शौक से मिलने चले जाते, तभी उनकी मुलाकात सूर्यकांत जी से होती थी। जानते थे घर पर सभी उनका इंतजार कर रहे होंगे पर अकसर इंतजार उनका कम होता पत्नी को रसोई के सामान का होता, बच्चों को अपने कापी, किताब, खिलौने का होता। रोहित सहाय सबकी माँगों को बिना किसी गिले-शिकवे के पूरे करते चले जा रहे थे। ... क्योंकि स्वयं तो संतोषी थे ही, पत्नी की भी कोई विशेष माँग नहीं थी।

रोहित सहाय महिने की सत्ताईस, अठाईस तारीख पर सोचते इस महिने शायद वह अपनी इच्छा पूरी कर ही लेंगे जो अब उनकी इच्छा के साथ जरूरत का रूप लेती जा रही थी। महिने के अंत में हिसाब करते तो अपने अरमानों पर इस बार भी पानी फिरा हुआ पाते और चुप-चाप सब्र कर लेते। अपने आफिस से मैट्रो के सफर के बाद जब वह जूतों के छालों से परेशान पैदल आते तो 'बाटा' कंपनी के जूतों की एक दुकान बीच में पड़ती। उस दुकान पर हरी पट्टियों वाले सफेद स्पोर्टस शूज उन्हें बहुत आर्कषित करते। जानते थे थोड़े महँगे हैं पर एक बार जब वह नाप परख रहे थे तब उन्होंने पाँव डाल कर देखे थे। हल्के-फुल्के गुद गुदे से जूते, चलते समय ऐसा लगा जैसे हवा में उड़ रहे हैं। उनकी इच्छा थी इस बार वह अपने लिये इस तरह के जूते ले ही लेंगे। उस समय, उस तरह के जूतों की कीमत कोई हजार पंद्रह सौ रुपये के आस पास ही रही होगी।

दुकान के मालिक सूर्यकांत जी ने सहाय साहब के आँखों की चमक को देखकर कहा था ले लीजिये साहब, कभी-कभी अपने बारे में भी सोचने में कोई बुराई नहीं है।'' पर सहाय साहब उचित समय का इंतजार कर रहे थे। इस तरह अकसर मिलने के कारण सूर्यकांत जी से सहाय जी के साथ अच्छी मित्रता हो गयी थी। पत्नी बच्चों के जूते भी सहाय साहब इसी दुकान से लेते। दोनों जब भी मिलते सहाय जी भरपूर किस्से सुनाते, दोनों खूब हँसते, दुकान के मालिक का नाम सूर्यकांत तेजा था जिसे सहाय साहब सुतेजा कह कर बुलाते। दोनों के बीच एक ग्राहक दुकानदार का संबंध न होकर घनिष्ठ मित्र जैसा संबंध हो गया था।

अब तो जैसे बिन कहे ही वह एक-दूसरे की बात समझने लगे थे। दोस्त के पाँव के अँगुठे को जूतों से झाँकता देख अकसर सूर्यकांत जी कहते 'हटा दो यार इन जूतों को। अब तो मोची भी इन्हें ठीक करने से इंकार कर देगा।' यह बात उस समय की है जब व्यापार के साथ लोग भाईचारा भी निभाते थे। छल, चालाकी जैसी कोई बात नहीं थी। अभी पिछले महिने सहाय जी दुकान पर गये थे। कुछ थकान सी लग रही थी। सूर्यकांत जी ने नौकर को आवाज न देकर स्वयं सुराही से ठन्डा पानी निकालकर पिलाया और दोनों के बीच आजकल के खानपान आदि की बातें होती रहीं, जब उठने लगे तो सूर्यकांत जी ने कहा ''यार आज तो तुम ये जूते ले ही जाओ ये मैंने तुम्हारे नाम रखे हैं।'' सिद्धान्तवादी सहाय जी ने कहा अभी और रखे रख यार और सूर्यकान्त जी ने कंधे पर प्यार से हाथ रखते हुये कहा था, दोस्त समझ कर ही रख लो। सहाय जी यह कह कर

आगे बढ़ गये 'दोस्ती को अपनी जगह ही रहने दो। ले जाऊँगा', जल्दी क्या है।''। उन्हें कहाँ पता था कि ''जीवन एक ऐसा रंगमंच है जिसके किरदार को स्वयं नहीं पता होता अगल दृश्य क्या है'' वो भी क्या करें आखिर शिक्षा कभी झुकने नहीं देगी और संस्कार गिरने नहीं देंगे। और आज सूर्यकान्त जी सहायजी के सामने उन्हीं के घर में जूतों का डिब्बा हाथ में लिये ऐसे खड़े थे जैसे देने में डर लग रहा हो, कहीं दोस्त नाराज न हो जाये। सूर्यकान्त जी को कुछ नहीं सूझा उन्होंने डिब्बा कमरे में ले जाकर रख दिया। अन्तिम क्रिया के लिये ले जाने में अभी देर थी। वह सोचने लगे कल जब उनकी पत्नी, बच्चे जूते देखेंगे तो यही सोचेंगे पापा अपने लिये जूते खरीद कर लाये थे पर हमें नहीं बताया।'' नहीं-नहीं इस तरह तो वे झूठे समझे जायेंगे। वो ऐसा नहीं होने देंगे'' तो क्या करें वह सोच नहीं पा रहे थे। वह सोचने लगे कि अभी कुछ समय तो सहाय जी उन्हें नजर आ रहे हैं। कल तो वह नहीं दिखेंगे तब उनकी दोस्ती को कौन मान्यता देगा। एक सज्जन जो उनके नजदीक खड़े थे धीरे से पूछ रहे थे ''आपके पैसे उधार थे क्या इनके ऊपर'' सूर्यकान्त जी ने नहीं में सिर हिलाया। किसी का उधार लिया हो ऐसे व्यक्ति थे ही नहीं रोहित सहाय जी। अभी उनका किसी विषय पर बात करने का मन नहीं हो रहा था क्योंकि जब व्यक्ति दूसरों की अन्तिम विदाई देखता है तब कभी वैराग, कभी परिवारजनों का मोह उस पर हावी होने लगता है। दुनिया की जितनी भी वास्तविकतायें लोगों को उस समय समझ आती हैं वैसे कभी और नहीं आतीं और वह भी क्षण भर का ही तो होता है।

इतना सब देखते सुनते दोपहर होने आई, स्वयं को रोकने का भरसक प्रयास किया पर सफल नहीं हो पाये। याद आने लगे साथ बिताये खुशी के पल, परिवार के प्रेम में बँधा इंसान भी कितने अदृश्य बंधनों से बँधा होता है। उस दिन रोहित सहाय जी अपने साथ कुरकुरे के कुछ पैकिट लाये थे। आते ही बैठ कर एक पैकिट मुझे पकड़ाया और कहा 'चलो खाओ' अचरज से देख रहे दोस्त को तब बताया था कि बच्चों के लिये अकसर ले जाता हूँ पर कभी चखा ही नहीं, प्रयास भी करता तो पत्नी खाना बिगड़ने का भय दिखाती, छोटा बेटा मजाक बनाता ''पापा बच्चों की तरह कुरकुरे खा रहे हैं। और इस तरह दो दोस्तों ने मिल कर कुरकुरे का चटपटा स्वाद चटकारे लेते हुये चखा। अपनी छोटी सी उपलब्धि पर खुशी देखते बनती थी। आज सोच के सूर्यकांत जी दोस्त की सरलता पर मुग्ध थे। सोचा ''अतीत जो चला गया, उसके लिये अपना मन खराब न कर भविष्य के सपने मत देख, वो कभी नहीं आयेगा केवल वर्तमान तेरे सामने है उसी को सँभाल ले वही तेरी पूँजी है।'' सूर्यकांत जी ने डिब्बा लिया और सहाय जी के पास जाकर बैठ गये। एकदम नजदीक अपने दोस्त के पास। शव पर कान अड़ा कर कहा'' यार कहा था न आज ही ले जा... पर सिद्धान्तों का पक्का है आज दे रहा हूँ ना मत करना और सूर्यकान्त जी फफक-फफक कर रो पड़े।

सहाय जी की यादों को, सूर्यकांत जी वर्षों तक नहीं भुला पाये। उनके वो मजाक वो ठहाके। आज लगता है शायद इस भौतिकवादी दुनिया के लिये नहीं बने थे, रोहित सहाय जी, वह तो भगवान के सीधे सरल बंदे थे, जिन्हें ईश्वर ने अपने पास बुला लिया। सूर्यकांत जी की दुकान पर आज भी कोई ग्राहक आता है और सूर्यकांत जी उसकी आखों में जूतों-चप्पलों के लिये चमक देखते हैं तो वह कीमत उसकी सुविधानुसार करके बताते हैं और उसकी इच्छा पूरी कर देते हैं। क्योंकि उनके यार की छोटी सी इच्छा पूरी नहीं हुई थी। सूर्यकांत जी दोस्ती का फर्ज अब निभाकर ही संतोष पा रहे थे।

सम्पर्क : भारूच (गुजरात)
मो. 9427130007

डॉ. चंद्रा सायता

आज भी...

लोग अपनी-अपनी समस्यएँ लेकर लोक अदालत में आए हुए थे। बड़ी भीड़ थी।

बार-बार लोक अदालत में आने पर भी जिन लोगों की समस्याओं का निदान नहीं हो पाया था। उनके ग्रुप में खड़ा एक त्रस्त बुजुर्ग व्यक्ति नगर निगम आयुक्त का नाम लेकर गालियाँ दे रहा था। साथ खड़े लोग भी हँसते हुए समर्थन कर रहे थे।

पास से गुजरते एक सज्जन ने गाली देने वाले व्यक्ति से बात करके जानना चाहा कि माजरा क्या है। माजरा जान लेने के बाद उसने कागज का एक टुकड़ा माँगा।

भीड़ में से एक युवक ने अपनी जेब से एक पुराना मुड़ा हुआ कागज उस सज्जन के आगे कर दिया।

उसने उस पर कुछ लिखा और बुजुर्ग को देते हुए कहा '...कल ठीक ग्यारह बजे नगर निगम ऑफिस में जाकर इस आफीसर से मिल लेना।'

अगले दिन उस बुजुर्ग ने ठीक वैसा ही किया।

चेम्बर में जाते ही उसने हाथ जोड़कर अपनी समस्या सुनाना शुरू कर दी।

आयुक्त के पी. ए. ने उसे, अपने सामने रखी कुर्सी पर बैठने को कहा और शांतिपूर्वक उसकी समस्या सुनी। इस बीच वह कुछ टाइप भी करता जा रहा था। बुजुर्ग काफी थका हारा और कमजोर लग रहा था। उसके लिए चाय मँगाई गई।

पी. ए. टाइप्ड कागज लेकर अंदर साहब से मिल आया।

आधे घंटे बाद प्यून ने पी. ए. को आकर कहा. .' इन्हें साहब अंदर बुला रहे हैं। बुजुर्ग प्यून के साथ अंदर चला गया।

साहब कोई फाइल देख रहे थे। बुजुर्ग सिर नीचा किए दोनों हाथ आपस में उलझाए खड़ा था।

साहब की टेबल के आजू-बाजू पाँच-छः कर्मचारी खड़े थे।

साहब जब हस्ताक्षर कर आदेश उस बुजुर्ग को देने लगे तो वह हैरत में पड़ गया, क्योंकि कमिश्नर साहब तो वही व्यक्ति थे, जिन्होंने कल उसे चिठ्ठी लिखकर दी थी। उसे चक्कर से आने लगे।

'आप लोग जा सकते हैं।'

अपने स्टॉफ की ओर देखते हुए उन्होंने आदेश दिया। सबके चले जाने पर बुजुर्ग फफक-फफक कर रो पड़ा। 'साब मुझे माफ कर दो। आज भी ऐसे फरिश्ते हैं, जिन्हें हम जैसे लोग पहचान नहीं पाते हैं।'

वह कहते-कहते साहब के पैरों पर झुक गया।

अर्थी और अर्थ

दस वर्षीय गौरव ने अपनी कृशकाय अस्वस्थ माँ से अनुरोध किया - 'लो माँ। तुरन्त दवा पी लो। इससे खाँसी जल्दी ठीक हो जाएगी।' गौतमी अस्वस्थता के चलते कुछ दिनों से काम पर नहीं जा रही थी। अब पास में पैसे भी नहीं बचे थे, जो दवाई मँगवा लेती।

गौतमी खाँसते-खाँसते बेटे से पूछ रही थी- 'बेटा। दवा के पैसे तू कहाँ से लाया?'

उसे मौन देख गौतमी ने अपनी आवाज तेज कर दी- 'तुझसे आखिरी बार पूछ रही हूँ कि दवाई के पैसे कहाँ से लाया?'

गौतमी की आवाज में दम नहीं रह गया था। अब रुआँसी हो कहने लगी 'नहीं बताएगा तो मेरा मरा मुँह देखेगा।'

अब तो गौरव फफक-फफक कर रो दिया। बहुत मुश्किल से सँभलते हुए उसने बताया कि उसने दवा के लिए पैसे नहीं चुराए, न ही किसी से माँगे थे। एक सेठ की शवयात्रा में पैसे लुटाए जा रहे थे। मैं भी और बच्चों के साथ शवयात्रा के साथ चल रहे लोगों के बीच घुस गया। हाथ लगे पैसों से जितनी दवा मिल सकी, ले आया।

गौतमी मौन थी, पर उसकी आँखों में संवेदना लबालब भरी थी।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)

शशि पुरवार

बुढ़ापे का बोझ

बच्चे परदेस में हैं और घोंसला खाली। उम्र की मार हम दोनों को थका रही थी।

मैं घर के बाहर काम करते-करते थक गया था। लेकिन घर के भीतर काम करती हुई पत्नी मुझे नजर नहीं आई। मैं रिटायर होकर घर पर आराम फरमा रहा हूँ। अपने दर्द व बीमारी में सेवा करवा रहा हूँ। लेकिन मेरी पत्नी बड़बड़ करती हुई अपनी हताशा और शरीर की लाचार होती हालत को छुपाकर काम करती रहती है। जिसकी खीज कई बार उसके चेहरे पर नजर आती है। मेरा समय बदल गया, दिनचर्या बदल गई जिसके कारण उसकी दिनचर्या में भी परिवर्तन आ गया। मेरे घर में रहने के कारण उसको समय खुद के लिए भी शायद नहीं मिल रहा था। मैं सेवानवृत्त हो गया हूँ लेकिन मेरी पत्नी आज भी इतने वर्षों से उसी दिनचर्या को जी रही है। क्या वह थकती नहीं है? आखिर वह भी इंसान है। उसकी थकी हुई आँखें और लड़खड़ाते कदमों को सहारा देने के लिए मेरे कदम स्वत: उठ खड़े हुए। अब तक उसने पूरे घर को सँभालकर रिश्तों को निभाया है, अब हमें मिलकर इस बुढ़ापे के बोझ को उठाना होगा।

श्रद्धा का दीपक

'क्या पत्रिका का संपादन कर सकती हैं?'

'जी बिल्कुल यह मेरा सौभाग्य होगा कि मुझे आपने इतनी बड़ी जिम्मेदारी सौंपी है। आपका मार्गदर्शन अपेक्षित है।' आशा की आवाज में उत्साह व श्रद्धा का दीपक जल उठा।

हाँ-बिल्कुल मैं आपकी मदद करूँगा! आपके कार्य में मेरा हस्तक्षेप नहीं होगा। मैं जल्दी ही आपके शहर में आने वाला हूँ, मुलाकात होगी।'

'सर आप पूजनीय हैं।'

मैं आपके साथ हूँ। आपके घर में कौन-कौन हैं, आपका परिवार साथ में है?'

'जी हाँ मैं अपनी बेटी के पास रहती हूँ।'

'क्या आपके पति आपके साथ नहीं रहते हैं?'

'सर आप इतना पर्सनल क्यों हो रहे हैं?'

'बस यूँ ही पूछना चाहता था। अच्छी बात है। आप अपनी बेटी के साथ रहती हैं। ठीक है आप कार्य करें। शेष बातें मिलकर करूँगा।'

'हृदय में जला हुआ श्रद्धा का दीपक यकायक बुझ गया।'

नव नारी के नजरिये की गंध फैल गयी थी।

जनरैशन गैप

मम्मी, मेरे सभी दोस्त लोग बाहर घूम रहे हैं। पार्टी व मस्ती कर रहे और मैं अकेली घर में रहती हूँ। बिट्टू कहने के बाद उदास हो गई...।

ठीक है! तू भी जाकर अपने दोस्तों से मिल ले।

आपको पता है पापा को बाहर जाना पसंद नहीं है।

तो तुम अपने दोस्तों को घर पर बुला लो। यहाँ मिल लेना। मैं सबके लिए पार्टी का इंतजाम कर दूँगी।

अचानक वह नाराज हो गई।

मम्मी आप मुझसे बात मत करो, यह पुराना जमाना नहीं है, आजकल की जनरेशन घर पर मिलना पसंद नहीं करती है। हमारी अपनी जिंदगी है। आजकल सब अपनी लाइफ अपने तरीके से जीते हैं। कोई किसी के घर नहीं जाता है।

समय के साथ चलते हुए भी माँ अवाक सी खड़ी थी कि यह जनरेशन गैप कैसे आ गया? आज यकायक माँ बहुत बूढ़ी हो गयी।

शायद यह अंतर वर्षों से चली आ रही परंपरा का द्योतक है!

आँखों की धुंध

आज विनीत देर से घर आये तो सुमि ने पूछा 'आज आने में देर हो गई।'

–हाँ ऑफिस में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के कार्यक्रम की तैयारी करनी थी, कल हमें महिला दिवस मनाना है।

सुमि ने चहकते हुए कहा–अरे वाह यह तो बहुत अच्छी बात है। फिर तो हमें भी विश करना चाहिए? मैं भी साथ चलूँ? कभी हमें भी वह सम्मान मिले।'

विनीत ने शुष्क तंज भरे स्वर ने कहा–'आजकल सरकार ने यह नए–नए नाटक पीछे लगा दिए हैं। अब हमें महिला दिवस पर महिलाओं का सत्कार करना होगा।'

सुमि चहकते हुए बोली–'तो क्या हुआ यह तो अच्छी बात है। महिलाओं का भी सम्मान होना चाहिए।'

'यह सब नए जमाने के चोचले हैं। तुम ज्यादा सिर पर मत चढ़ो।'

'पर महिलाओं के बिना तो दुनिया का अस्तित्व ही नहीं है। आज हर पुरुष को जन्म देने वाली महिला ही है। हमें सोच बदलने की आवश्यकता है।'

विनीत का स्वर उखड़ गया–'फालतू की बातें नहीं चाहिए अपने काम से काम रखो। मैं बहुत थक गया हूँ।'

आँखों में धुंध के बादल पल भर में छँट गए। नजरिया साफ नजर आने लगा।

सम्पर्क : मुंबई (महा.)
मो. 9420519803

यशोधरा भटनागर

रोटी

सलोनी गोल-गोल रोटी फूल कर कुप्पा हो रही थी। चाँदी की थाली में जो परोसी जाएगी। सही भी था! सब्जी, दाल, रायता, गुलाब जामुन न जाने अपने कितने साथियों के साथ रोटी थाली में सज गई।

हँसते मुस्कुराते वह चमचमाती चाँदी की थाली हट्टे-कट्टे, सूटेड-बूटेड रौबीले आदमी के सामने पहुँची। चेहरे पर सलबल लिए आदमी मोबाइल फोन में घुसा, बड़े सलीके से सलाद चबा रहा था।

'ओह गॉड टिल नाऊ यू हेव नॉट कंप्लीटेड दिस प्रोजेक्ट?(ओह! आपने यह प्रोजेक्ट अभी तक पूरा नहीं किया?)'

भुनभुनाकर थाली एक ओर सरका दी। सहमी रोटी, भरी चाँदी की थाली को तक रही थी।

रंग खुशियों के!

रंगों से सजा प्रांगण खिलखिलाहटों से गुंजायमान था। सभी लड़कियाँ एक-दूसरे को रंग गुलाल लगाकर होली के रंग में रँग गई थीं।

'मैडम जी आप रंग से बच न पाओगी।'

और लड़कियों ने मुट्ठी में रंग भर मुझे रँग दिया।

मैं रंगों से सराबोर थी। पर मेरे अंदर कुछ उमड़-घुमड़ रहा था। जिनकी पूरी दुनिया ही ब्लैक है वे...

'बच्चों! आप तो होली के रंग में रँग गए... आपको रंग।'

'मैडम जी हमने रंगों को देखा तो नहीं किंतु रंगों को छुआ तो है...और रंगों ने हमको!

चारों ओर खिलखिलाहटें फिर फैल गईं। सच में खुशियों के रंग नहीं होते।

स्वाद

घर में सन्नाटा पसरा हुआ है। अम्मा जी घर आँगन में चक्कर लगातीं बड़के, छोटे और उनके बाबूजी के बीच सब कुछ ठीक करने में लगी हैं। बड़के की बहू ने किसी बात पर छोटे को 'निकम्मा' जो कह दिया था। बस जुबान से शब्द छूटा और घर.. घर नहीं मानो कुरुक्षेत्र का मैदान बन गया। बोल-बाल

के बहू तो भीतर चली गई और घर की सुख-शांति डर के मारे कहीं दुबक गईं।

माना छोटा कुछ न करे है पर अंधे को अंधा न कह, सूरदास कह दो तो बुरा न माने हैं। समझा लेती प्यार से.. बस... पर 'क्या कर रही हो बहू?'

'सब्जी चख रहे हैं अम्मा जी। नमक-अमक स्वाद ठीक है या नहीं। नहीं तो फिर एक हंगामा खड़ा हो जाएगा।'

अम्मा जी धीरे से बहू के कंधे पर हाथ रख कर बड़े प्यार से बोलीं- 'बोलने से पहले ऐसे ही अपने शब्द भी चख लिया करो न बिटिया।'

धरित्री!

रसोई में कुछ छन्न से गिरने और टूटने की आवाज।

'बहू अभी तक तुम कोई काम ठीक से नहीं कर सकतीं।'

'नीरा! तुम जल्दी से टिफिन तैयार कर दो ऑफिस के लिए देर हो रही है।'

'माँ मेरे मोजे नहीं मिल रहे। प्लीज जल्दी से दे दो न। स्कूल बस आती ही होगी। नहीं तो बस छूट जाएगी।'

मीरा भागती-दौड़ती बिना किसी शिकन के झटपट सारे काम निपटा रही थी। कुछ देर बाद घर में शांति पसर गई। नीरा ने गहरी साँस ली और चाय की प्याली लिए बालकनी में टँग गई। बारिश की रिमझिम बरसती बूँदें, लाल गुलाबों पर मोती सी सजीं सामने पीपल के चमकते चिकने पत्ते 'माँ! माँ!'

आज रिया के कॉलेज की छुट्टी है। मैडम अभी उठी हैं। रिया की दोनों बाँहें माँ के गले में झूल रही थीं। 'माँ क्या आपको कभी गुस्सा नहीं आता। अपने कमरे में सब कुछ सुन रही थी। आप ऐसे दौड़-दौड़ काम कर रही थीं जैसे कोई मैराथन हो।'

'बेटा हर औरत रोजमर्रा की जिंदगी में मैराथन ही तो दौड़ती है और रही गुस्से की बात हर औरत अपने अंदर धरती लिए चलती है। गिरि, गह्वर, नदी, समुद्र, ज्वालामुखी, वन, वाटिका सब कुछ.. यह सब कुछ अपने अंदर समेटे वह धरित्री होती है। धरित्री।'

'धरित्री! धरती!'

रिया ने माँ के चेहरे को ध्यान से देखा, पसीने की बूँदें मोती सी दिपदिपा रही थीं। चेहरा गुलाबी गुलाब सा बहुत सुंदर लग रहा था।

'माँ तुम बहुत सुंदर हो!'

सम्पर्क : देवास (म.प्र.)
मो. 9425306554

अंतरा करवड़े

पेड़ तथा अन्य कहानियाँ

इस संग्रह की कहानियों में स्थान-स्थान पर एक इंजीनियर, एक व्यंग्यकार, एक रचनाधर्मी के रूप में लेखक के दर्शन अनायास होते हैं। लीक से हटकर ही इस संग्रह की भूमिका है, जिसे परदेशी राम वर्मा ने लिखा है। इसमें लेखक की सरलता को लेकर एक सहज स्वीकारोक्ति है जो आपको पुस्तक से जोड़ती है।

'पेड़' जो कि शीर्षक कथा है, राजा महाराजाओं के समय से चलते हुए वर्तमान विकसित अवस्था में बदलती सोच का प्रतीक है। 'मृत्युबोध' कहानी, आज कितने ही घरों की मूक व्यथा है जहाँ कोई बड़े पद से सेवानिवृत्त कोई बुजुर्ग बैठा है और अपनी अकड़, अफसरी, व्यस्तता और मान सम्मान के सुनहरे दिनों और सेवानिवृत्ति के बाद की वास्तविकता और प्राथमिकताओं से आँख मूँद लेना चाहता है।

यदि 'स्मृतियाँ' शीर्षक की कथा को देखें, तो अपने जीवन को चलचित्र कि भाँति एक असफल निर्देशक के नजरिए से देखने वाला सामान्य व्यक्ति दिखाई देता है। प्रत्येक परिवार में इस प्रकार के व्यक्ति का कुछ न कुछ प्रतिशत किसी न किसी पात्र में दिखाई दे ही जाता है। ये दोनों ही कहानियाँ, समय के साथ मन का विस्तार न कर पाने वाले, एक ही साँचे में रहने वाले और एक ही दृष्टि से संसार को देखने वाले बुजुर्गों की व्यथा है, जो सब कुछ समझकर भी, अपनी ही आदतों से स्वयं परेशान हैं।

'दहशत' कथा हम सभी की कथा है। लॉकडाउन के दौरान की बदली हुई स्थितियाँ जिन्होंने केवल मानवता को ही नहीं बदला है, हम सभी के आपसी संबंधों पर प्रभाव डाला है और अंतरात्मा के रूप में भी हमें जो लगता था कि हम स्वयं ऐसे हैं, वैसा सब कुछ कहीं भी नहीं था।

'आतंकवादी' कहानी एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसे अपने बेटे की स्थिति को लेकर सामाजिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। समाज का चेहरा ऐसी कहानियों में सशक्त रूप से सामने आता है जब व्यक्ति को अपने न किए हुए अपराध के लिए असहाय स्थिति में, निरंतर अपमानित होते रहना होता है।

'सुआपंखी साड़ी', एक बदलाव के रंग की कथा है। यहाँ पर सशक्त रूप से भावना को रेखांकित कैसे करना है, यह बताने में लेखक सफल है। स्त्रियों को लेकर जो निरर्थक उथली सोच प्रचारित की

पुस्तक: 'पेड़ तथा अन्य कहानियाँ', लेखक: अश्विनीकुमार दुबे
प्रकाशक : सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य: रु. 400/-

जाती है, उससे परे उनके भावनात्मक पक्ष को उभारती हुई यह कथा इस संग्रह को अलग ऊँचाई देती है।

'कर्तव्य' जैसी कहानियों की इस दौर में भी हमें जरूरत पड़ती है, यह एक समाज के रूप में हमें जीवन की परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर देता है। बेटे की चाह में बेटियों का परिवार में आना और वास्तविक रूप से उस भाग्यवान पुत्र के जीवन का उत्तरार्ध में शून्यवत रह जाना, हमारे सामने अनेक प्रश्न रखता है।

'संदेह' और 'मुलाकात' जैसी हल्की-फुल्की कथाएँ एक प्रवाह के रूप में इस संग्रह को आगे बढ़ाती हैं।

'असफल होती प्रेमकथा' एक ऐसी कथा है जो एक अफसर की दृष्टि से वर्तमान समय की पीढ़ी और उसकी विस्तारित सोच का परिचय करवाती है। यदि विवाह करना है, तो केवल पत्नी की नौकरी होना भी क्यों काफी नहीं है? इस सोच के साथ नवीन पीढ़ी काफी सहज है, नवीन सोच है और इसका स्वागत करना हर किसी के लिए सरल नहीं है।

'महानता' यह कथा सरकारी व्यवस्था के अनुसार अपने ध्येय को समानांतर चलाते हुए एक ऐसे व्यक्ति की कथा है, जिसका प्रमुख पात्र हमें अपने आस-पास आसानी से दिखाई दे जाता है।

'लॉकडाउन' एक लंबी कहानी है जो महामारी के समय की विभीषिका, मानसिक और सामाजिक बदलावों के उतार-चढ़ाव और जीवन में अपने ही व्यक्तित्व से पहली बार होते साक्षात्कार जैसा बहुत कुछ हमारे सामने रखती है।

'लल्लन' बाबू जैसी कथा या फिर कहें व्यथा हमें सिद्धांतों के पक्के परिवारों के कितने ही पात्रों की कहानी दिखाती है। अति सिद्धांतवादी पूर्व पीढ़ी और बगावत पर उतर आने वाली नवीन पीढ़ी के बीच न तो संतुलन बचता है न समझदारी।

'बँटवारा' और 'चेक बुक' जैसी कथाएँ लेखक की व्यापक दृष्टि और स्त्रियों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं। अपने अधिकारों के प्रति सजग स्त्रियाँ, विवाह के बाद अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्य पथ पर पीछे रह जाती हैं, स्वेच्छा से।

इसके अलावा अनेक कथाएँ ध्यान खींचती हैं जैसे 'डैडी, चाचा कब आएँगे', 'बदचलन' आदि।

देखा जाए, तो यह संग्रह लेखक के विस्तारित दृष्टिकोण, समाज की वर्तमान स्थिति और भविष्य की चुनौतियों के बीच एक संतुलन का शाब्दिक प्रयास बनकर हमारे सामने आता है। अधिकांश कथाएँ हैं जिनमें एक स्पष्ट समापन का अभाव थोड़ा खटकता है। लेकिन इसे शायद लेखक द्वारा पाठक पर किया हुआ विश्वास या उन्हें अपने मन के विस्तार के लिए दिया गया अवसर भी कहा जा सकता है।

भाषा सरल है, शैली में लेखक का कार्यक्षेत्र और भौगोलिक पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से सामने आती है।

इन रचनाओं में यदि कुछ मानवीय संवेदनाओं के बारीक चित्रण को भी स्थान दिया जाए, प्राकृतिक चित्रण, सौन्दर्य और कल्पनाशीलता के कुछ शब्द मिलकर इन कथाओं को और अधिक रंजक, प्रस्तुति के लिए परिपूर्ण बना सकते थे।

कुल मिलाकर यह संग्रह और इसकी कहानियाँ लंबे समय तक आपके साथ बनी रहेंगी। इसके केवल पात्र या घटनाएँ नहीं, समग्रता आपकी साथी होती है।

सम्पर्क : इन्दौर (म.प्र.)
मो. 9752540202

डॉ. शकुंतला कालरा

स्त्री विमर्श की सच्चाइयों की सशक्त कहानियाँ

सुमन बाजपेयी जी एक प्रतिष्ठित कहानीकार हैं जिनकी कहानियाँ परिमाण और गुणवत्ता दोनों दृष्टि से अप्रतिम हैं। यह कहानियाँ उनके भीतर बैठी शक्ति स्वरूपा मगर संवेदनशील चेतना ने उनसे लिखवाई हैं। इसलिए स्त्री विमर्श की ये कहानियाँ इस बात की साक्षी हैं कि स्त्री जितना अधिक संघर्ष करती है, वहीं संघर्ष उसे टूटने से बचाता है। वह परिस्थितियों से लड़ती है, वह हारती नहीं है। इस संग्रह की कहानियाँ स्त्री जीवन के विविध पहलुओं पर केंद्रित हैं। इनके कथानक परिवार से शुरू होकर संपूर्ण समाज तक व्याप्त हैं। स्त्री को कितनी भावनात्मक उपेक्षा सहनी पड़ती है। कभी पत्नी के रूप में, कभी माँ के रूप में, इसका लेखिका ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है और फिर इन कहानियों के माध्यम से पुनः उसी समाज को दर्पण दिखाया है। पुरुष समाज नारी के शक्तिशाली रूप को स्वीकार नहीं कर पाता। उसे चाहिए नारी का समर्पणशाली रूप। उसका वर्चस्व वह नहीं स्वीकार पाता। उसका अहंकार नारी की कामयाबी को स्वीकार करने नहीं देता। इस कड़वी सच्चाई को सुमन बाजपेयी जी ने बहुत कुशलता से अभिव्यक्त किया है। नारी जीवन की कुछ अन्य सच्चाई भी उनके इस संग्रह में उद्घाटित हुई है।

व्यक्त सभी करते हैं, लेकिन किसी बात को, किसी विषय को कैसे बताया जाए, कैसे समझाया जाए, यही अभिव्यक्ति कौशल है और इसी को कला कहते हैं। सुमन बाजपेयी की अभिव्यक्ति बहुत सशक्त की अभिव्यक्ति है। क्यों और कैसे के पक्ष की अलग-अलग रूप में व्याख्या की जो बिलकुल भी असंगत नहीं है। सुमन जी की कहानियाँ कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अत्यंत सफल बन पड़ी हैं।

उनकी कहानियों का कैनवास बहुत व्यापक है। इसमें हर्ष, विषाद, प्रेम, पीड़ा, आँसू और खिलखिलाहट हैं। चमकदार रंग भी हैं और फीके भी। कहानियाँ असली जीवन के विविध पहलुओं से जुड़ी है। हर कहानी में एक तथ्य, एक प्रसंग, एक घटना, अथवा एक अंश है या एक स्थिति का प्रभाव चित्रित किया गया है। लेखिका का मानना है कि कहानियों में यदि कोई उलझन है तो उनका समाधान भी है। जैसे शीर्षक कहानी 'फोटोफ्रेम में कैद हँसी।' इसमें पति-पत्नी के बीच कम्युनिकेशन गैप है। मनप्रिया

पुस्तक : फोटो फ्रेम में कैद हँसी (कहानी संग्रह)
लेखिका : सुमन बाजपेयी, प्रकाशक : फ्लाइड्रीम्स पब्लिकेशन्स, जैसलमेर
पृष्ठ संख्या : 164, मूल्य : 160 रुपए

चाहती हैं दोनों एक-दूसरे को छोटी-छोटी बात बताएँ पर अनुराग दिलचस्पी नहीं लेता। हर बात पर हिदायतें देता है कि ऐसा करो वैसा न करो। मनप्रिया को अपनी जिंदगी निरर्थक सी लगने लगती है। वह खुलकर जी नहीं पा रही है। उसका वैवाहिक जीवन में दम घुट रहा है। वह सहजता चाहती है। वैसी ही सहजता जैसी उसकी दीदी और जीजा जी के जिंदगी में है। वह महसूस करती है कि जीजा जी की हँसी दीदी को मदहोश किए रहती है। दीदी के घर भी वह चुपचाप रहती है, इससे कहानी में जीवन के यथार्थ का बोध होता है। जीजाजी पत्नी से पूछते हैं कि वह चुप क्यों रहती है तो उसकी दीदी कनुप्रिया कहती है मैं समझा चुकी हूँ कि वह ज्यादा सोचा न करे। इस तरह से लेखिका दीदी के माध्यम से समाधान रखती हैं कि 'अनुराग का स्वभाव अलग है तू उसे वैसे ही समझने की कोशिश कर। वह रिजर्व है, कम बोलता है तो क्या हुआ?'

एक अत्यंत भावुक कर देने वाली कहानी है 'पिघलती सिल्लियाँ।' इसमें माँ-बेटे के बीच अत्यंत नाजुक रिश्ता है। लेखिका तरसती रही उस ओर से थोड़ी ऊष्मा पाने के लिए। किसी कोने से काश थोड़ी पिघल जाए। वह लिखती हैं, 'उसके और मेरे बीच बर्फ की कई सिल्लियाँ जम चुकी हैं। बर्फ की ये चौकोर सिल्लियाँ आकार व अनुपात में समान व नुकीली न होने के बावजूद, किसी टूटे काँच के टुकड़े की मानिंद उसके दिल में चुभती हैं। उससे उठने वाली पीड़ा इतनी पैनी होती है कि उसका पूरा अस्तित्व हिल जाता है। कितना तो रो चुकी है वह, अपने भाग्य को भी कोस चुकी है, ईश्वर के सामने कितनी प्रार्थनाएँ कर चुकी है। पंडितों की बातों पर विश्वास कर जिसने जो उपाय करने को कहा, उसने वे भी किए...आस सब कुछ करवाती है, शायद इस तरह से ही सिल्लियाँ पिघल जाएँ, पर सब व्यर्थ।' पति की मृत्यु के बाद जब अंतिम विदाई के लिए उसे ले जाया जाने लगता है तो शिवानी पति की मृत देह से लिपट-लिपट कर रो पड़ती है तब बेटे शिवम ने माँ को गले लगा कर कहा 'मत रो माँ। ऐसा ही होना था। सँभालो अपने आप को। मैं हूँ न?' लेखिका का यह वाक्य कि सिल्लियाँ पिघल रही हैं, पूरी कहानी की आत्मा है। इसी तरह संग्रह की अन्य कहानियाँ 'दो रंग की गोटियाँ', 'अब नहीं छलने देगी, 'सपनों के पंख', 'सुरक्षा कवच', 'छोटे शहरों में, 'रुक जा', 'सन्नाटा डॉट कॉम' भी युग चेतना से अनुप्राणित हैं।

स्त्री विमर्श को लेकर आज जो नई चेतना उभरी है, उस पर सुमन जी की पैनी दृष्टि है जो उन्हें समसामयिक बनाती हैं। ये कहानियाँ वास्तविकता की जमीन पर जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत करती हैं। कहानियों का शिल्प अभिव्यक्ति को सामर्थ्य प्रदान करता है। कहानियों की भाषा मात्र अभिधात्मक ही नहीं होती, इसका अभिव्यंजना पक्ष भी होता है जो लेखक के भाव, संदेश और अभीष्ट को भी ध्वनित करता है। इसी को साहित्यिक भाषा कहते हैं। इसमें प्रतीक, बिंब, टोन कुछ भी हो सकता है। दो रंग की गोटियाँ कहानी लेखिका के भाव, संदेश को प्रतीकात्मक भाषा में व्यक्त करती है। पुरुष की प्रकृति को ध्वनित करती है।

यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि संग्रह की सारी कहानियाँ प्रभावित करती हैं जो जीवन के स्तर से उठकर रमणीयता के स्तर पर आ जाती हैं, जहाँ रचना, शब्द, अर्थ का मेल मात्र न रहकर कला के स्तर पर पहुँच जाता है।

सम्पर्क : नई दिल्ली

डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

साहित्य में महाराजा छत्रसाल

'साहित्य में महाराजा छत्रसाल' डॉ. बहादुर सिंह परमार द्वारा सम्पादित ऐसे लेखों का संग्रह है जिनमें छत्रसाल के जीवन एवं साहित्य से संबंधित घटनाओं और प्रसंगों को प्रमाणित तथ्यों के साथ प्रस्तुत किया गया है जिनसे अद्यतन संदर्भों की जानकारी हो जाती है।

डॉ. परमार बुंदेली और बुंदेलखण्ड संबंधी साहित्य के अच्छे अध्येता और जानकार हैं। वे कुशल लेखक और प्रभावशाली वक्ता हैं। वर्तमान तरुण पीढ़ी के साहित्यकारों में उनकी अच्छी ख्याति है। बुन्देलखंड क्षेत्र के साथ देश के विभिन्न अकादमिक आयोजनों में वे बुन्देली साहित्य का विस्तार करते हैं। उन्होंने अनेक कृतियों का प्रणयन किया है। वे अच्छे शोधार्थी और शोध-निर्देशक हैं। अब तक उनके निर्देशन में दर्जनों शोधार्थी शोध उपाधि प्राप्त कर चुके हैं।

विवेचित ग्रंथ 'साहित्य में महाराजा छत्रसाल' में कुल 23 आलेख संकलित हैं। इसमें कुछ आलेख पूर्व प्रकाशित पत्रिका 'राष्ट्रगौरव' से संकलित हैं और कुछ आलेख वे हैं जो महाराजा छत्रसाल बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर द्वारा आयोजित सेमिनार में पढ़े गए थे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य लेख भी हैं। इन लेखों से इस तथ्य की भलीभाँति जानकारी हो जाती है कि छत्रसाल के बारे में कब, किसने, कहाँ क्या कहा, कौन-कौन से ग्रंथ प्रकाशित हुए और किस रूप में उल्लेख है?

डॉ. श्याम सुन्दर दुबे ने छत्रसाल के पुरुषार्थी, अनुरागी और स्वतंत्रता प्रेमी व्यक्तित्व को रेखांकित किया है। श्री श्रीनिवास शुक्ल ने छत्रसाल की राष्ट्रीयता, डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया ने उनकी आस्था और नीति, डॉ. भागीरथ मिश्र ने छत्रसाल और कविभूषण के संबंध सम्पर्क तथा डॉ. हौसिला प्रसाद सिंह ने छत्रप्रकाश में वर्णित छत्रसाल को अंकित किया है। श्री बाबूलाल गोस्वामी द्वारा प्रस्तुत दानकवि रचित 'छत्रसाल देव को कटक बंध' ऐसा काव्य ग्रंथ है जिसमें मुहम्मद गौस एवं छत्रसाल के मध्य हुए युद्ध का वर्णन है।

पुस्तक : साहित्य में महाराजा छत्रसाल
सम्पादन : डॉ. बहादुर सिंह परमार

डॉ. लखन लाल खरे और शिवभूषण सिंह गौतम में उन तमाम ग्रंथों, ग्रंथकारों और शोध ग्रंथों का उल्लेख किया है जहाँ छत्रसाल के जीवन प्रसंग हैं। डॉ. परमार ने छत्रसाल से जुड़े ग्रंथों की आधुनिकतम जानकारी दी है। राकेश व्यास ने उन कथेतर ग्रंथों की चर्चा की है जहाँ छत्रसाल अंकित हैं। प्रो. यशवंत सिंह और प्रो. जयप्रकाश शाक्य ने छत्रसाल और महामति प्राणनाथ के मिलन और उपदेश आदि की सोदाहरण विस्तृत की चर्चा है। डॉ. अवधेश कुमार चंसौलिया, डॉ. दुबे, डॉ. प्रमोद पाठक, डॉ. गायत्री वाजपेयी, डॉ. के.एल. पटेल, नाथूराम राठौर, डॉ. आदित्य विक्रम सिंह, संदीप चौरसिया, कु. गरिमा शुक्ल के लेख छत्रसाल के व्यक्तित्व-कृतित्व एवं उल्लिखित संदर्भों पर प्रकाश डालते हैं।

एक विशेष उल्लेखनीय आलेख नंद किशोर पटेल का है जिसमें उन्होंने हिन्दी सिनेमा और महाराजा छत्रसाल पर बनी फिल्मों आदि की तिथिवार जानकारी दी है और उनका भी उल्लेख किया जिन्होंने इसमें अपना योगदान दिया। पद्मश्री डॉ. अवध किशोर जड़िया के छंद पठनीय और प्रेरक हैं।

इस प्रकार यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें प्रारंभ से लेकर आज तक रचे या लिखे गए गद्य-पद्य ग्रंथों तथा साहित्यिक-ऐतिहासिक शोध प्रबंधों की जानकारी हैं। जहाँ छत्रसाल के ऐतिहासिक अवदान को रेखांकित किया गया है।

चूँकि डॉ. परमार विश्वविद्यालय से जुड़े हैं अतः उन्हें सुझाव देना चाहूँगा कि छत्रप्रकाश, छत्रसाल ग्रंथावली व छत्रसाल प्रमाणावली (पत्र संग्रहों) आदि के नए सिरे से प्रकाशित करने की योजना बनायें ताकि वह छात्रों, शोधार्थियों को सहज उपलब्ध हो सके। साथ ही शोध विषयों में क्षेत्रीय विस्मृत साहित्यकारों को प्राथमिकता दें।

सम्पर्क : सतना (म.प्र.)
मो. 9425376413

डॉ. संदीप अवस्थी

अंतर्ध्वनि

कहानी हमारे आपके मध्य ही जन्म लेती है। परन्तु कई बार कुछ अंतराल में वह असामयिक मृत्यु को प्राप्त हो जाती है क्योंकि संवेदना के बारीक तंतु को पकड़ना, उसे आत्मसात करना, परकीया प्रवेश कर पीड़ा, बेचैनी को जीते हुए शब्दों को काल के शिलालेख पर उकेरना वास्तव में कोई बहुत कठिन राह से गुजरा राही ही कर पाता है। मुरलीधर वैष्णव उसी पीड़ा और संवेदना के राही हैं। दरअसल शब्दों के माध्यम से समष्टि की पीड़ा को स्वर ही नहीं देना बल्कि उसे पाठकों के सामने साकार कर देने का हुनर उन्हें समकालीन कहानीकारों में अग्रिम पंक्ति में रखता है। चेखव ने कहा है कि, ''कहानी कोई समाधान दे यह जरूरी नहीं परन्तु वह आपको सचेत करे यह जरूरी है।''

हमारे आस-पास के वे स्वर जिन्हें हम अक्सर अनसुना कर देते हैं, जिन्हें हम याद भी नहीं करना चाहते और वे घाव कब हमें नासूर की तरह टीसते हैं। हमें बहुत देर होने के बाद पता चलता है। इस संग्रह की कहानी 'अपात्र' का जिक्र सबसे पहले। यहाँ एक सनातनी वैष्णव पिता हैं जो डॉक्टर बेटे के द्वारा हरिजन तहसीलदार को घर पर साथ खाना खिलाने से कुपित होकर, उसे जनेऊ पहने रखने से वंचित कर देते हैं। परिवेश में एक आग्रह है कि आज भी कुछ पुराने लोग जाति-पाँति की संकीर्णता से बँधे रहते हैं। लेकिन प्रकृति का नियम हैं कि मनुष्य में हृदय परिवर्तन की संभावना सदा बनी रहती है। किसी असाधारण परिस्थिति में वह अपनी दकियानूसी सोच को तिलांजलि दे कर समय भी सच्चाई से रूबरू भी हो सकता है। कहानी का अंत एक दिलचस्प घटनाक्रम से होता है।

जिंदगी में हम सभी शोषण के दौर से गुजरते हैं और उसे जिम्मेदारी, फर्ज या ऐसा सबके साथ होता है, का नाम देते हैं। और जब निकलते हैं उस दौर से बाहर तो ज्यादातर खुद उसी अत्याचारी, शोषक की भूमिका में कब आ जाते हैं यह भी नहीं जानते। लेकिन असंख्य लोग ऐसे भी हैं जो आज भी जन्म से मृत्यु तक शोषित, पीड़ित ही रहते हैं। मुँह नहीं खोल पाते। 'पिटोकड़ा' उर्फ पीराराम की

पुस्तक : 'अंतर्ध्वनि' कथा संग्रह, लेखक : मुरलीधर वैष्णव
मूल्य : दो सौ रुपये, संस्करण : 2021, रॉयल प्रकाशन, जोधपुर

बात कहती संग्रह की यह बेहतरीन कहानी है। एक बँधुआ मजदूरन का बेटा ठाकुर के यहाँ पीढ़ियों से गुलाम है। नई पीढ़ी का यह बालक भी ठाकुर के पुत्र का ऐसा नौकर बना कि ठाकुर का कुँवर बैटिंग करे तो रन के लिए पिटोकड़ा दौड़े, स्कूल में मास्टर साहब कुँवर के होमवर्क को अधूरा पाएँ तो मुर्गा पिटोकड़ा। उसे जताया जाता है कि उसकी नियति है कि वह सदा दयनीय ही बना पिटता रहे, पिटता रहे। बहुत बड़ी पीड़ा, दर्द को स्वर दिए हैं लेखक ने इस कहानी में। वह सामान्य बालक कभी-कभी अकेले बैठता तो सोच में डूबा रहता। ठाकुर की मृत्यु के बाद वह कुँवर युवावस्था में ठाकुर बन कर गाँव, जमीन, जायदाद बेच कर मुम्बई में बस जाता है। युवा पिटोकड़ा किराए की टैक्सी चलाता हुआ जयपुर के होटल में अचानक उससे मिलता है। कुँवर साहब को झुककर खम्मा घणी करता है। बानगी देखिए, सोच और सामन्तवादी मानसिकता की कि यहाँ भी कुँवर अपनी बला उसके सिर मढ़ देता है। झूठ बोलकर। पुलिस के द्वारा अचानक हाइवे पर पकड़े जाने पर पिटोकड़ा को अहसास होता है कि आजादी के सत्तर सालों बाद भी उस जैसे असंख्य लोग पिटोकड़े ही बने हुए हैं। क्या रास्ता है? विद्रोह होगा ही, लेकिन दिक्कत यह है कि व्यक्ति के खिलाफ न होकर वह समष्टि के खिलाफ हो जाता है और हल नहीं निकलता। किया 'अ' ने और दंड झेलते हैं 'ब' और 'स'। इसी व्यवस्था और सोच को बदलना है।

'अंगूठो बोलेगो', 'केशर कश्मीरा', 'अणची', 'कोर्ट एडजर्न्ड' ऐसी ही प्रतिरोध को स्वर देती कहानियाँ हैं जिसमें पात्र अपने खिलाफ हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज, बेबसी में ही सही, पर उठाते हैं। क्योंकि व्यवस्था, सामंतवादी सोच और हिटलरी मानसिकता ने कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा। जीवन में सहे जाओ और मौत चुनो या फिर विद्रोह करो।

लेकिन यह आवाज उठाने का अंतिम विकल्प न रहकर पहला ही कदम बन जाए तो? हर तरह के अन्याय, शोषण, रूढ़ियाँ, फरेब का तनिक भी अहसास होते ही उसका पुरजोर प्रतिकार, विरोध, दम भरके हो तो कोई परिवर्तन हम सोच में देखेंगे।

राजस्थान आज पिछड़ेपन से उबर रहा है। लेकिन कई दशकों बाद भी वही सोच है जो स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक मानती है। 'बायाँ रो बेरो', 'अणची', कहानियाँ हमें बहुत कुछ सोचने को मजबूर करती हैं। यह भी कि कहीं हमारे प्रतिरोध, सोच और तैयारी में कमी तो नहीं? क्या हम नाम के लिए ही शिक्षित हुए या हममें जागरूकता आई? आई तो क्या हमने सबसे पहले दूसरों की तकलीफ दर्द पर बातें बनाना और यह भाव कि''अपन तो अच्छे हैं, अपने साथ यह सब नहीं हुआ'' कहकर अपने दायरे को और समेटना बन्द किया या नहीं? सोच के देखें और स्वयं को जवाब दें कि किसके दर्द, तकलीफों को आपने बाँटा? कितनी नम आँखों के आँसू आपने पोंछे? यही मनुष्य होने और ईश्वर की हमारे मध्य हाजिरी है। प्रेमचंद, फिर रामविलास शर्मा, फिर नामवर सिंह सभी यह बात कहते हैं कि, ''साहित्य समाज और राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है। जिसके उजाले में राष्ट्र अपनी राह बनाता और चलता है।'' सच्चे लेखक का यह कर्तव्य है कि वह गलत बातों, अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध आँखों में आग लेकर खड़ा हो। उसे अपने सृजन का विषय बनाएँ। आप पढ़ो दस अच्छी किताबों को तो खुद ही अपनी रचना की कमियाँ जान जाओगे। और आगे सुधारकर अच्छे

लेखक बनने की राह पर आ जाओगे।

साहित्य लेखन वह भी कोर्ट और न्यायिक विषयों पर बहुत दुरूह और उबाऊ हो जाता है। लेकिन लेखक स्वयं लगभग चार दशक तक न्यायिक अधिकारी रहे हैं तो उस क्षेत्र की घटनाओं और अनुभव को वैष्णव ने प्रामाणिकता और रोचकता के साथ कहानियों में पिरोया है। 'उड़ता तीर' (लगातार पनिशमेंट पोस्टिंग की मार झेलता मजिस्ट्रेट), 'युद्ध' 'दूध से पेट्रोल तक', 'कोर्ट एडजन्र्ड' ऐसी ही दिलचस्प कहानियाँ हैं जो हमें उस दुनिया में ले जाती हैं जो आम व्यक्ति की पहुँच से बाहर है। यानी जज, न्यायपालिका के रास्ते, उनकी कड़वी-मीठी सच्चाई और ईमानदार, खरे व्यक्ति के सम्मुख आने वाली चुनौतियाँ और उससे जूझता न्यायाधीश तो कभी राहत भरे सुखद दृश्य भी।

इन सब में यह बात स्पष्ट है कि जागरूक, वैचारिक दृढ़ता और कठोर निश्चय के बिना आप आज के जीवन में सिर उठाकर नहीं जी सकते। संग्रह से ही एक संवाद है, ''देख रही हूँ कि भोभर यानी चूल्हे की राख में आग है या नही''? यह बहुत गहरी बात है कि हम सभी में वह आग बची है या जीवन की आपाधापी, अभावों, सुविधाओं को जुटाते हुए हम सभी आगविहीन हो गए हैं? ऐसे बुत जो बस देखने के ही काम के हैं और उनका कोई उपयोग नहीं। यह नहीं होना चाहिए। विश्वास के साथ अपने अंदर की आग को कुरेदें, जगाएँ और किसी अभावग्रस्त, पीड़ित का चूल्हा रोशन करें।

संग्रह की कहानियाँ एक विविधतापूर्ण संसार से हमे परिचित कराती हैं। लेखक ने भाषा सहज, सरल और पात्रों की आंचलिकता के अनुकूल रखी है। बस यह ध्यान रखने की जरूरत है कि कुछ कहानियों में अति नाटकीयता या कहें सुविधा से थोड़ी आजादी लेखक ने ली है। बाकी सभी कहानियों में यथार्थ के धरातल पर पात्र हमसे आपसे मिलने को उत्सुक हैं। बस आइए, और इस सशक्त कथा संग्रह 'अंतर्ध्वनि' के नाद को सुनिए।

सम्पर्क : नई दिल्ली
मो. 7737407061

रमाकांत नीलकंठ

जीवन का रेशा-रेशा उधेड़ने वाली आत्मकथा

वरिष्ठ कवि रमाकान्त उद्भ्रांत जी की सद्य: प्रकाशित आत्मकथा 'मैंने जो जिया' के दूसरे खण्ड 'किस राह से गुजरा हूँ' का अनुशीलन पूरा कर चकित हुआ हूँ कि यह आत्मकथा कैसे कवि की जाग्रत स्वयंप्रभा प्रतिभा से स्फुटित होकर अनायास आले दर्जे के उपन्यास में ढल गयी है। मार्मिक अर्थ की तलाश में एक उपन्यासकार जहाँ अपनी कृति में कल्पना शक्ति का उपयोग कर और गृहीत विचारों का समावेश कर उसे लक्ष्यपूर्ति तक ले जाता है, वहाँ यह आत्मकथा कवि के जीवन की यथार्थ घटनाओं से बुनी जाकर भी मार्मिक अर्थ-परिणतियों तक परिच्छेद-दर-परिच्छेद बाकायदा चली जाती है। इस आत्मकथा को पढ़कर सहानुभूतिपूर्ण और संवेदनासिक्त प्रतिक्रिया में एक टीस-सी उभरती है कि अपनी उम्र के प्रथमोन्मेष में ही एक कवि-लेखक के रूप में काफी चर्चित हो चुके युवक की घरेलू निजी जिंदगी और जीविकोपार्जन हेतु कार्यालयीय संघर्ष-कथा अप्रत्याशित ढंग से कितनी दुखद, पेचीदा और लोमहर्षक रही है। मगर अपनी जगह वह साक्ष्य सहित है। आप बयान है।

टुकड़ों-टुकड़ों में पैबस्त की गई यह जीवनकथा इतनी एकतान है कि सीयन का पता नहीं चलता। इसके साथ ही इस कथा का पट समतल मैदान की तरह नहीं, बल्कि किसी बीहड़ भूखण्ड की तरह दिखाई देता है, जिसमें जंगली कँटीली झाड़ियाँ हैं तो जल के सोते भी हैं। बड़े-बड़े खोह हैं तो पार पाने की पगडण्डियाँ भी हैं। निराशा के गर्त हैं तो आशा के टीले भी हैं। ये सब होते हुए भी इस आत्मजीवनी में साहित्य और जीवन से प्रेम का राग अटूट स्वर में बजता रहता है। इससे कवि की अप्रतिहत जिजीविषा प्रमाणित होती है। इस आत्मकथा में जिन दुश्चक्रों, दुरभिसंधियों, दुर्दशाओं और विपत्तियों का बयान हुआ है और कवि ने जिनसे पार पाया है, वह पराजयों से गुजरती हुई ऐसी जयगाथा है जो यथार्थ जीवन में कम ही देखने को मिलती है।

जीवनी के इस भाग में कवि ने वह सब कह दिया है बेझिझक-जिसे आमतौर पर लोग कायरता और ढकोसला के दामन में मन की काँख में छिपाये हुए जन्म-जन्मांतरों तक भटकते रह जाते हैं। चित्त की

समीक्ष्य कृति: 'मैंने जो जिया-2: किस राह से गुजरा हूँ' (आत्मकथा), लेखक: रमाकांत शर्मा 'उद्भ्रांत'
प्रकाशक: अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ संख्या: 368, मूल्य (पेपरबैक संस्करण): 375/-

सफाई नहीं हो पाती। बहुत से धर्मों में गुनाह कबूल करने की प्रथा पाई जाती है। मगर यहाँ बे-प्रथा, बे-रिवाज सामाजिक प्रतिष्ठा के दबाव को एक तरफ कर, सत्य की रोशनी के दबाव को ही परम दबाव मानकर, निजी जिंदगी के स्याह-सफेद पक्षों को ही नहीं, ऐसे असामान्य रंग के पक्षों को भी खोलकर रख दिया गया है जिससे नैतिक मान्यताओं को ठेस पहुँच सकती है। यद्यपि समाज की आम जिन्दगी के परदे के पीछे वे कुप्रवृत्तियाँ और कुचेष्टाएँ प्रचलित रहतीं हैं और लोग उसके शिकार रहते हैं, लेकिन कबूल करने को कोई तैयार नहीं होता। उस वातावरण में प्रतिष्ठा की बुलन्दी पर पहुँचकर भी कवि ने जो जिया, जो अमृत या विष पिया, लालसा या वासना के वशीभूत जो उसने किया या मौके की नजाकत से उसके जो कदम उठे, उसे साहसपूर्वक लिख दिया है। इस तरह सत्य की अग्नि-गंगा में नहाकर कवि मुक्त हो गया है। उसे अब कोई ग्रंथि बाँध नहीं सकती। चित्त में गुँथी हुई सारी ग्रंथियों को, गुत्थियों को उसने इस आत्मकथा की बेबाकबयानी के द्वारा सुलझा कर उन्मोचित कर दिया है।

इस आत्मकथा में कवि की पारिवारिक और प्रशासनिक जिंदगी के अलावा उसकी साहित्यिक रूमानी जिंदगी की अकुंठित तरंगों का भी इतिहास है। किन्तु साथ ही साहित्य के प्रति और मौलिक रचनात्मकता के प्रति उनकी गम्भीर जवाबदेही भी पग-पग पर झलकती है। अपनी युवा ऊर्जा के उन्मेष से वह अकेले दम 'युवा' नाम से पत्रिका निकालता है। उसकी ख्याति बढ़ती है। एक तरफ उभरते समवयस्क युवा कवि-लेखकों से उसकी मेत्री का मजबूत सूत्र जुड़ता जाता है तो दूसरी तरफ सुमित्रानंदन पंत, हरिवशंराय बच्चन, दिनकर, नागार्जुन, प्रभात, भवानीप्रसाद मिश्र और अमृतलाल नागर जैसे शिखरस्थ कवि-लेखकों का स्नेहपात्र भी बनता जाता है। बच्चन जी तो उसके साहित्यिक गुरु ही नहीं, उसके हर सुख-दुख के साक्षी, मददगार और मार्गनिर्देशक भी बन जाते हैं। और बने रहते हैं। आत्मकथा से पता चलता है कि उस दौर के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों और प्रसिद्ध पत्रिकाओं के सम्पादकों के साथ उसका गहरा परिचय है। वह धड़ल्ले से छपता है। मंचों पर आमंत्रित होता है। आकाशवाणी से प्रसारित होता है। सभी से अवसर आने पर मिलता-जुलता है। मुश्किल से ही सही, उसकी गीतों-कविताओं की पाँच किताबें भी छप जाती हैं। उन्तालीस-चालीस साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते वह हिन्दी के अन्तर्प्रदेशीय दायरे का एक लोकप्रिय चर्चित नाम बन जाता है।

पर, उसी के समानांतर पारिवारिक जीवन का घुटनभरा कलहपूर्ण माहौल उसे तोड़ता भी है। माता, पिता, भाई, बहन, बच्चे, पड़ोसी, किरायेदार, मकान मालिक आदि रिश्तों के विडम्बनात्मक उलझावों पर जितना खुलकर इस आत्मकथा में कहा गया है, उतना शायद ही कहीं कहा गया हो। फिर भी निजी जीवन के विकट कलह-कोलाहल में भी उसकी चेतना मे साहित्यिक रुझान का वर्चस्व सर्वोपरि प्रभावित रहता है। वह जन्मजात संस्कार से किशोर अवस्था से ही एक कवि-गीतकार के रूप में उभरता है और जल्दी ही नवगीत आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर बन जाता है। उसके गीतों की धमक चौतरफा गूँज उठती है। नवगीत के उन्नायकों में उस समय जिनका बड़ा नाम और दबदबा था, यथा-शम्भुनाथ सिंह, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि, सभी के स्नेह और प्रशंसा का वह पात्र बनता है। किन्तु इस आत्मकथा से यह बात भी आत्मावलोकन करने जैसी चिन्ता के स्वर में उभरती है कि जब कवि देखता है कि गद्यामक कविता लिखने वाले उसके समकालीन धूमिल जैसे या बाद की आठवें दशक की पीढ़ी

के कवियों यथा, आलोकधन्वा, ज्ञानेद्रपति आदि को आलोचना क्षेत्र में और- सामान्य रूप से भी- जो प्रश्रय और शोहरत मिल रही है, वह नवगीतकारों को सुलभ नहीं हो रही है, तब कवि नवगीत से जुड़ा रहकर भी कविता के क्षेत्र मे हाथ आजमाता है, जहाँ उसे यथेष्ट सफलता भी मिलती है और एक संग्रह- 'नाटकतंत्र तथा अन्य कविताएँ' भी छपकर सबके सामने आ जाता है। कदाचित यही वह रेखा है, जहाँ से कवि नवगीत से कविता की और अभिगमन करता है। उसे यह देखकर कुछ विस्मय-मिश्रित दुख होता है कि कविता में छन्दों की अवहेलना हो रही है और सपाट गद्य की सराहना हो रही है। जैसाकि बाद में सिद्ध हुआ। कवि ने कविता के क्षेत्र में गद्य और छन्द दोनों को साधा। और लुप्त होती प्रबंध काव्यों की परम्परा को भी नया जीवन प्रदान किया। जो बातें कवि के जीवन में बाद में बड़े पैमाने पर चरितार्थ हुईं, उसके बीज युवावस्था में ही उसकी चेतना की जमीन मे पड़ गए थे। आत्मकथा का यह दूसरा भाग उसकी गवाही देता है।

एक कवि में और दुनियादार आदमी में फर्क होता है। साहित्य की दुनिया में भी कुछ दुनियादार लोग पाये जाते हैं। यह और बात है। इस आत्मकथा से यह साफ होता है कि कवि अपने स्वच्छन्द मिजाज की रौ में इस तरह गतिमान रहता है कि परिपार्श्व में घट रही घटनाओं, हो रही साजिशों, रचे जा रहे धोखों, बुने जा रहे जालों से बेख्याल रहता है। कवि की साहित्येतर भौतिक जिंदगी परिवार और ऑफिस के दो मोर्चों पर इस तरह भिड़ती है कि ऐसी कोई हद नहीं जो टूट नहीं जाती। कवि विश्वासी है, पर धोखे और दुरभिसंधि का भेद खुलने पर, यद्यपि इसमें प्राय: देर होती है, वह सघंर्ष को उस सीमा तक भी ले जाता है जिसे कोई दुर्धर्ष योद्धा ही ले जा सकता है। ऐसे सघंर्षों के रोमांचक विवरण इस आत्मकथा में बड़ी चित्रमयता और नाटकीयता के साथ आये हैं जिसके हर किरदार का चरित्र अपनी सारी बारीकियों में अलग-अलग टाइप में साकार हो उठा है। यह सब कवि की कारयित्री प्रतिभा से संभव होता है अन्यथा आत्मकथा सपाट वर्णन बनकर रह जाती।

कवि जीवन के जंजाल में फँसकर भी उसे काटने की क्षमता रखता है, उसके कीचड़ में आकंठ धँसकर भी कमलवत सिर ऊपर रखने की शक्ति से सम्पन्न रहता है, तभी अपने रचनाकार के अदम्य संकल्प को रूपायित कर पाता है। इस आत्मकथा में कवि एक ऐसे नायक के रूप में उभरता है जो दुनियावी स्तर पर विरोध ही विरोध पाता है, प्रहार ही प्रहार पाता है, किन्तु उससे नखशिख-विद्ध होकर भी, अंग-अंग चोटिल होकर भी हार नहीं मानता। अन्तत: रचे गये व्यूहों से पार पाता विजयी होकर निकलता है। इस आत्मकथा के पाठक कवि के जीवन-सघंर्ष से नि:सृत कितनी ही सीखों से लाभान्वित हो सकते हैं। एक आम आदमी के रूप में उसके पैरों में जहाँ परिस्थितियों की बेड़ियाँ हैं, वहीं एक कवि-लेखक के रूप में उसके सामने एक सुनहरे भविष्य का झांकता स्वप्न है। जिसे साकार करने के लिए उसकी उद्दाम इच्छा हर क्षण तरंगायित रहती है। इस जद्दोजहद में बाजी उसकी इच्छाशक्ति के हाथ में लगती है। उसके जीवन की कहानी दुर्भाग्य की आग के दरिया से होकर गुजरती तो है, किन्तु डूबते-डूबते भी सौभाग्य के तट से लग ही जाती है।

इस आत्म कहानी का नायक तो कवि है, किन्तु सहधर्मिणी के प्रधान नायिका होने पर भी नायिकाएँ और भी हैं। एक पुरुष के रूप में कवि का रागात्मक संसार बहुत समृद्ध है। वह स्त्रियों के प्रेम

और विश्वास का सहज पात्र बनने के नरोचित गुणों से सम्पन्न है। पाठकों को इस बात से मधुर संतोष हो सकता है। और आत्मकथा में आये प्रणय-प्रसंगों का मानवीय मूल्य इस तरह भी आँका जा सकता है कि यह पक्ष यदि सबल न होता तो कवि को जीवन के पूर्वपक्ष में जिन भीषण कटुताओं से टकराने को विवश होना पड़ा है, उससे वह उबर न पाता। इन प्रसंगों का मूल्यांकन व्यभिचार की श्रेणी में रखकर नहीं हो सकता। सामाजिक जड़ता की अपनी हदबंदियाँ व्यक्ति-मनुष्य की रागात्मक मुक्ति के प्रायः विरोध में पड़ती हैं। वे मनुष्य को औसत के दायरे में बाँधकर संतुष्ट होती हैं। वे बाँधने की ज़ंजीरें हैं। स्वाधीन मानस का मनुष्य जहाँ तक संभव है, उसकी परिधियों को विस्तृत करने का प्रयास करता है। भोग और वर्जना का द्वन्द्व सामाजिक मनुष्य की चिरन्तन समस्या है, जिसका हल आजतक नहीं निकला है। स्वैराचार और चीज है। प्रेम का स्वीकार तो बहुत गहरी जिम्मेदारी से जुड़ा रागधन है, जिसकी बड़ी कुशलता से हिफ़ाजत करनी पड़ती है। यह आत्मकथा गवाह है कि कवि ने जीवन में आये प्रेमधन का मान रखा है। मर्यादा रखी है। और उसके बरक़्स दाम्पत्य के पलड़े को झुकने भी नहीं दिया है। बल्कि राग की मुख्यधारा दाम्पत्य के क्षेत्र में ही बहती है।

यहाँ यह देखने की भी जरूरत है कि कवि ने जीवन में घटित विविध प्रसंगों को बिना छिपाव के यथावत रख दिया है। वह नैतिकता-अनैतिकता की बहस में नहीं उलझा है। न उनपर किसी किस्म का मुलम्मा चढ़ाया है। सत्य के तकाजे को पूरा करना ही उसकी प्रतिज्ञा रही है जिसे उसने विरल साहसिकता के साथ पूरा किया है। अच्छे-बुरे का निर्णय भी कोई क्या करे, जिरह भी क्या करे, जब जीवन का रेशा-रेशा ही उधेड़कर प्रत्यक्ष कर दिया गया है। सामाजिक इज्जत और आत्मप्रतिष्ठा के प्रति इतनी निर्मम निरपेक्ष दृष्टि कवि ने कहाँ से हासिल की, यह विचार का विषय हो सकता है। किन्तु यह आत्मकथा सत्य के चरणों में कवि का चढ़ाया हुआ अमूल्य नैवेद्य है, यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता। यह वह अर्घ्य है, जिसकी कीमत लोग आँकते रह जायेंगे।

यह आत्मकथा आत्मकथाओं के साहित्य-संसार में अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण करेगी, इसमें दो राय नहीं। जो लोग इसे पढ़ेंगे अपने भीतर झाँकने से बरी या बाज नहीं रहेंगे। यह कृति कालजयी सिद्ध होगी, इसमें भी कोई संशय नहीं।

सम्पर्क : वाराणसी (म.प्र.)

घनश्याम मैथिल 'अमृत'

समकालीन यथार्थ से मुठभेड़ करती पैनी लघुकथाएँ

मुझे स्मरण आता है एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक आयोजन की अध्यक्षता करते हुए ख्यातनाम व्यंग्यकार पेशे से चिकित्सक पद्मश्री डॉक्टर ज्ञान चतुर्वेदी ने कहा था –'अथाह जल राशि से भरे समुद्र से एक चम्मच पानी ले कर यदि उसका परीक्षण किया जाये तो उसमें समुद्र जल के समस्त गुण धर्म मौजूद होंगे, यानी लघुकथा में आकार और विस्तार को छोड़ दें, तो कथा के समस्त गुण और विशेषताएँ पाई जाती हैं।' इसी सन्दर्भ में पिछले दिनों लघुकथा शोध केंद्र भोपाल द्वारा आयोजित 'लघुकथा पर्व– 2019' के अवसर पर प्रथम अखिल भारतीय माधव राव सप्रे लघुकथा सम्मान से सम्मानित वरेण्य वरिष्ठ लघुकथाकार श्री भागीरथ परिहार की लघुकथा संबंधी परिभाषा भी उल्लेखनीय है, कि– 'लघुकथा जीवन के अणुओं को सूक्ष्म दर्शी से देखने का प्रयास है, यह सूक्ष्म साहित्य यह बताने की क्षमता रखता है, कि जीवन में जो भी सूक्ष्म है वह महत्त्वपूर्ण है, ठीक उस परमाणु की तरह जो शक्ति का स्त्रोत होता है।'

आज हम सभी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि भाग दौड़ और आपाधापी से भरी जिंदगी में हर आदमी के पास समय की कमी है। बहुत कम समय में अधिक पाने की चाह ने हमारे जीवन जीने की शैली को बदलकर रख दिया है। आज का समय त्वरित गति का समय है। इस 'रेपिड एक्शन पीरियड' में हर जगह 'माइक्रो' यानी सूक्ष्मता का बोलबाला है। फिर भला साहित्य जगत इससे कैसे अछूता रह सकता है और फिर यदि एक उपन्यास और लंबी कहानी का मर्म, सन्देश अथवा पाठकीय संतोष यदि एक लघुकथा में पाठक को मिल जाये तो वह सहज ही लघुकथा की ओर आकर्षित होगा, बस शर्त है कि 'लघुता में प्रभुता' हो 'वामन में विराट के दर्शन हों, क्योंकि यहाँ अतिरिक्त शब्दों के लिए कोई जगह नहीं, इसीलिए लघुकथा लेखन एक दुष्कर कार्य है, भाव, कथ्य, शिल्प, में जरा भी चूके कि सँभालने का कोई अवसर ही नहीं। एक महत्त्वपूर्ण नाम वरिष्ठ साहित्यकार कर्नल डॉक्टर गिरिजेश सक्सेना का, जिनकी कविता कहानी, संस्मरण की अनेक कृतियों के प्रकाशन के पश्चात अब लघुकथा कृति 'चाणक्य के दाँत' सुधि पाठकों के सन्मुख है। भारतीय सेना चिकित्सा कोर से सेवा निवृत सैन्य अधिकारी गिरिजेश जी धरातल से जुड़े वे व्यक्ति हैं, जिन्होंने जमीन से लेकर आस्मां का सफर अपनी मेहनत के बूते किया है। उन्हें जहाँ गाँव और गरीबों को करीब से देखने का अनुभव है वहीं उन्होंने पाँच सितारा 'वी आई पी कल्चर को भी निकट से देखा है।' इस प्रकार वे आकाश में विचरण करते हुए अब अपनी जमीन को नहीं भूले

पुस्तक : चाणक्य के दाँत (लघुकथा संग्रह) कर्नल.डॉ. गिरिजेश सक्सेना 'गिरीश'
मूल्य : रु. 200/–, प्रकाशक : अपना प्रकाशन, भोपाल

और इस दीर्घ जीवन में उन्हें जो भी खट्टे-मीठे अनुभव हुए हैं, उन्हें लघुकथाओं के माध्यम से कागज पर उकेरा है। उनकी कथाओं के पात्र उनके अपने जीवन से जुड़े सच्चे चरित्र हैं। कृत्रिमता और बनावटीपन से मुक्त, इसलिए ये पाठक को भी अपने से लगते हैं और वह इन लघुकथाओं से स्वयं को ऐसे जुड़ा हुआ अनुभव करता है, जैसे वह इन घटनाओं का स्वयं पात्र अथवा हिस्सा रहा हो। ये लघुकथाएँ पाठक को कभी दुलारती हैं, कभी फटकारती हैं, कभी गुदगुदाती हैं तो कभी चुभती है। ये लेखकीय कौशल ही है कि हर लघुकथा में छीजते दिशा विहीन होते समाज की चिन्ता है, चिंतन है। लेखक की अपनी जो पृष्ठभूमि होती है, उसका लेखन उससे अछूता भला कैसे रह सकता है। अत: सेना और चिकित्सा के जीवनुभव के भाव भी इन लघु कथाओं में सहज दृष्टिगोचर होते हैं।

'दो कदम भी न चले' अंध विश्वास से लड़ती लघुकथा है, कैसे समाज में आज भी बच्चों को असमय मृत्यु से बचने के लिए उनके उल्टे-सीधे नाम रख दिए जाते हैं। 'आवाज दो हम एक हैं' लघुकथा में जरा-जरा सी बातों में आपसी झगड़ा और प्रतिस्पर्धा को उकेरा गया है। 'चेहरे पर लिखे दाम' एक आम अनुभव की लघुकथा है, कैसे दुकानदार ग्राहक और उसके हैसियत देख कर वस्तुओं के दाम तय करते हैं। 'नकल में अकल' मुहावरे को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत करती लघुकथा है। 'बाजी' हृदय को हिला देने वाली मार्मिक लघुकथा है, कैसे शतरंज के खेल में नशे की तरह डूबे खिलाड़ी अम्मा की तबियत खराब होने से अम्मा मर ही जाती है परन्तु अपनी बाजी नहीं छोड़ते, यह लघुकथा हमें प्रेमचंद की 'कफन' कथा का स्मरण कराती है। 'भूख' लघुकथा भूख का अहसास कराती है। जब भूख लगती है, या जिसे भूख लगाती है तभी इसका सच्चा अहसास होता है। 'पेट की आग' में भी बताया गया है कि भूख कितनी निर्मम होती है, भले बाबू जी मर गए परन्तु भूख नहीं मरी, भूख की आग चिता की आग से कम नहीं, बहुत प्रभावी लघुकथा। 'गजानन उवाच' में पर्यावरण की पीड़ा है, किस तरह प्रतिमा विसर्जन से हमारी नदियाँ, हमारे सरोवर दूषित हो रहे हैं। 'कूकर सभा' एक अच्छी व्यंग्य लघुकथा है, जो कुत्तों के माध्यम से हमारे समूचे मानव समाज पर कस कर तमाचा मारती है। 'मेरी मिट्टी' एक सैनिक का अपनी मातृभूमि से प्यार का भाव दर्शाने वाली भावनापूर्ण लघुकथा है। 'तीसरा नेत्र' धरती प्रकृति के साथ अत्यधिक शोषण, बिगड़ते पर्यावरण के गंभीर दुष्परिणाम होंगे, बताती लघुकथा है। चुटकी की ताकत, किसी व्यक्ति को छोटा समझने की भूल न करे 'चाणक्य के दांत', हस्तरेखा-ज्योतिष एवं समुद्र शास्त्र के जंजाल से मुक्त हो कर्म की प्रधानता को स्थापित करती लघुकथाएँ है। वहीं 'खुदा' लघुकथा में कैसे एक मरीज डॉक्टर को भगवान का रूप मानता है बताया गया है। 'डूबते सूरज 'बुजुर्गों के बच्चों द्वारा अवहेलना की व्यथा कथा है वहीं' मैं माँ हूँ द्रोपदी नहीं 'एक माँ की करुण कथा, संपत्ति की तरह का बँटवारा करती संतानों पर सटीक प्रहार है। श्रम का अभिमान, सत्ता परिवर्तन, दस्तूर, ट्रायल, शेरनी, सपनों की राख आदि लघुकथाएँ भी विविध सामाजिक विषयों पर केंद्रित प्रभावी लघुकथाएँ हैं। यह गिरिजेश जी का लघुकथा पथ पर पहला सोपान है। उन्हें अभी लंबी यात्रा तय करनी है, इन लघुकथाओं में वरिष्ठ लघुकथा लेखकों, आलोचकों को कुछ कमियाँ भी दिख सकती हैं, परन्तु इस सबके बावजूद यह आम आदमी की पीड़ा का दस्तावेज है। निश्चित ही यह लघुकथाएँ पाठक के मन को झकझोरने, समाज में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों को बुहारने का काम करेंगी, लघुकथाकार गिरिजेश जी के इस प्रथम लघुकथा संग्रह प्रकाशन पर बहुत-बहुत बधाई।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9589251250

डॉ. रमेश चन्द्र शाह

मर्यादा कानूनों की

लड़कपन में पढ़ी सुनी-गुनी कविताओं की जैसी टिकाऊ छाप अनायास ही मन पर पड़ जाती थी। ठीक वैसी छाप बाद में पढ़ी कविताओं की नहीं टिकती- यह हम सभी का अनुभव होगा। अपनी बात करूँ तो मेरे बाल-मन और किशोर मन पर जिन तत्कालीन बहुचर्चित कवियों की ऐसी अविस्मरणीय छाप अंकित है, उनमें सोहनलाल द्विवेदी जी भी खासी जगह घेरे हुए थे। उनकी कविता अनायास याद हो जाती थी और उन्हें दूसरों को सुनाने की भी उत्कंठा स्वत:स्फूर्त ढंग से जागती थी। हमारे नगर की जानी-मानी कवयित्री क्षमा पाण्डेय को अपने दादाजी का उत्तराधिकार सहज प्राप्त हुआ है। उनके इस सम्बन्ध की जानकारी मिलने पर क्षमा पाण्डेय की कवि सुलभ कारगुजारियों के प्रति विशेष उत्कंठा एवं उत्सुकता का जगना सहज-स्वाभाविक था। यह जो उनका काव्यसंग्रह अभी हाल प्रकाशित हुआ है- जिसके लोकार्पण-समारोह में हम सब कलारसिक जन यहाँ एकत्र हुए हैं, उसकी भूमिका इस नाते और अपने-आप में भी रोचक, पठनीय और भावोत्तेजक लगती है। कुछ वैसी ही छाप रसिक पाठकों के मन पर पड़ती है। स्वयं क्षमाजी की स्वीकारोक्ति इस सन्दर्भ में प्रासंगिक है। उनके कथनानुसार- मेरे दादाजी व पिताजी दोनों ही गाकर कविता सुनाते थे : मेरा अर्न्तमन गेय और छन्दोबद्ध कविताएँ सुनकर बहुत प्रफुल्लित होता था; इसलिए बचपन से ही गेय और रागात्मक कविताएँ लिखने की सहज प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई। यह बात इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए आपके अपने पढ़नानुभव से भी पुष्ट होगी। भाषा-शैली और छंदबद्धता को लेकर ही नहीं, कविताओं के रागाविष्ट स्वभाव और कथ्य के मामले में भी कवयित्री क्षमा पाण्डेय के संस्कार उसी आद्य प्रेरणास्रोत से जगे और परिपुष्ट हुए, ऐसा मेरी तरह आप सभी काव्यप्रेमी पाठकों को भी अनुभव होगा। कथ्य को लेकर भी आप कवयित्री की इस स्वीकारोक्ति से अवश्य संवेदित और सहमत होंगे कि 'मेरा भी अधिकांश कविता लेखन का आधार राष्ट्रीय ही रहा।' साथ ही, उनकी यह प्रतीति भी हम पाठकों के अपने अनुभव से सत्यापनीय और सर्वथा युक्तियुक्त लगेगी कि... 'बचपन में पड़े संस्कार सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली होते हैं।'

पुस्तक : 'मर्यादा कानूनों की', लेखिका : डॉ. क्षमा पाण्डेय
प्रकाशक : नमन प्रकाशन नई दिल्ली, मूल्य : रुपये 250/-

क्षमा पाण्डेय की ये कविताएँ 'वक्रोक्तिजीवित न होकर अत्यन्त पारदर्शी रागात्मक अभिव्यक्ति की कविताएँ हैं। मानव शीर्षक कविता को ही देखें कवयित्री को उतना ही सहज और मूल्यवान कर्तव्य लगता है, जितना कि इंसानियत की गाथा को – क्या कहती है?' 'वेद की भाषा समझना इसे आत्मसात् करना, कितनी कठिन किंतु अनिवार्य चुनौती है यह हम सबके लिए?

समझ लें वेद की भाषा
सुने इंसानियत गाथा
तभी मानव कहायेंगे
बचेगी धर्म की आस्था।।

क्षमा की कविताएँ अतीत गौरव का राग ही नहीं जीवन-सार की विडम्बनाओं और दुस्सह अन्तर्विरोधों के प्रति भी सजग-संवेदनशील है। हम राम के बल्कि / वर्तमान आँख सामने के अंश कहाते रहे / पर राम का अर्थ भुनाते रहे उनकी कविता कहती है। यह कितना प्रखर आत्मालोचन है- हमारे मर्म को झकझोर कर जगाने वाला मात्र आत्मावसाद या आत्म-चिक्कार पर नहीं। यह कवयित्री जहाँ एक ओर संविधान की पुकार भी सुनती सुनाती है, वहीं दूसरी ओर नर-नारी विषयक संकीर्ण दृष्टि की विडम्बना को भी उधाड़ कर रख देती है। वर्तमान 'अन्धायुग' में अधिकार-चेतना जिस अनुपात में विकसित हुई है, कर्तव्य-चेतना उसी अनुपात में सिकुड़ी और सिमटी है। इस आत्मघाती विडम्बना को भी निर्ममतापूर्वक उघाड़ती है वह संग्रह का नामकरण ही की उस सजग दोहरी चेतना को अभिव्यक्त करता है- भले यह नाम कई पाठकों को उतना न जैथे। प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में जगह-जगह संवेदनशील पाठकों का ध्यान आकर्षित करने और आत्मतुष्टि को झंझोड़ देने वाली सूझें भी अलग से, और समूची संरचना की दृष्टि से भी अर्थोन्मेष्टा और चेताने वाली हैं।

अस्तु इस पठनीय और रोचक ही नहीं, भावोत्तेजक और प्रेरणादायी कविता-संग्रह के लोकार्पण के अवसर पर कवयित्री क्षमा पाण्डेय को बधाई देते हुए हमारे जैसे काव्यप्रेमियों की उनसे यह प्रत्याशा और शुभकामना भी सहज स्वाभाविक है कि क्षमा का आगामी कविकर्म भी निरन्तर विकास और परिष्कार की ओर अग्रसर होता रहेगा और अपने पाठक- समुदाय को भी भावात्मक परिपक्वता की प्रेरणा देती रहेगा। साथ ही परिस्थिति और संस्कृति के बीच सच्चा संतुलन बनाए रखने की चुनौती को भी कवि सुलभ कर्तव्य की तरह निबाहता रहेगा। स्वयं उसी के शब्दों में-

कर्त्तव्यों के साथ रहा है
इन अधिकारों का संगम।
आजादी तभी सुरक्षित
जब इसे करें हृदयंगम।।

सम्पर्क : एम-4, निराला नगर,
भदभदा रोड, भोपाल (म.प्र.)

गत अंकों की ही तरह विविध स्तरीय सामग्री से समृद्ध साक्षात्कार का अगस्त-सितम्बर-अक्टूबर 2021 अंक प्राप्त हुआ। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि आपके संपादन में पत्रिका न सिर्फ अति पठनीय बल्कि संग्रहणीय स्वरूप में भी प्रकाशित हो रही है। पिछले अंक की विशिष्टताओं पर कुछ टिप्पणी करने को अभी सोच ही रहा था कि तब तक यह अंक आ गया। इस अंक के सम्पादकीय में आपने श्री मानस रंजन महापात्र के माध्यम से जिस ज्वलंत विषय को उठाया है, उस पर मैं आपकी दृष्टि से शत-प्रतिशत सहमत हूँ। चाहे साहित्य हो, चित्रकला हो या कि अभिनय, अभिव्यक्ति के हर क्षेत्र में बहुसंख्यक समुदाय के धर्म, आचरण तथा संस्कृति पर अनर्गल टीका-टिप्पणी करना तथा उसे विकृत स्वरूप में प्रस्तुत करना आज एक फैशन सा बन चुका है। जो रचनाकार या कलाकार हिन्दू देवी-देवताओं का जितना ही अधिक उपहास उड़ाता है, हिन्दू धर्म ग्रन्थों के उद्धरणों को जितना ही विवादास्पद ढ़ंग से प्रस्तुत करता है, वह उतना ही बड़ा प्रगतिशील माना जाता है। लेकिन किसी दूसरे समुदाय के बारे में कुछ कहने या लिखने में इन तथाकथित प्रगतिशीलों की मेधा को लकवा मार जाता है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति बहुसंख्यक समुदाय की सहिष्णुता, सदाशयता तथा उदारता का दुरुपयोग है। आवश्यकता है कि इस प्रकार के अपमानजनक लेखन, वाचन अथवा प्रदर्शन करने वालों की न सिर्फ सार्वजनिक रूप से निंदा की जाए बल्कि उनका हर स्तर पर बहिष्कार भी किया जाए।-**अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'-लखनऊ।**

इन दिनों मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी भोपाल लाजवाब काम कर रही है विचारधारा से परे दिवंगत साहित्यकारों पर केन्द्रित विशेष अंक उन पर केन्द्रित आयोजन कवि सम्मेलन और समारोह आदि आदि। साक्षात्कार नवगीत विशेषांक लाजवाब है। अनूठा होने से संग्रहणीय है। डॉ. विकास दवे निदेशक मध्य प्रदेश इसका सम्पादन अनूठा है कि सम्पादकीय में नवगीत पर बात करने के साथ साथ नवगीतकार डॉ. रामसनेही लाल यायावर का शानदार साक्षात्कार है। उसके बाद ही नवगीत केन्द्र में रखकर दस्तावेजी आलेख फिर पूर्व पीठिका में- माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, केदारनाथ अग्रवाल, रामावतार त्यागी, वीरेंद्र मिश्र, उमाकांत मालवीय, देवेंद्र शर्मा 'इन्द', नईम, कुमार शिव, चंद्र सेन विराट, तारा दत्त निर्विरोध, आदि। समकालीन स्वर में सोम ठाकुर, जीवन शुक्ल, बाल स्वरूप राही, किशोर काबरा, डॉ. ओम प्रकाश सिंह सहित एक लम्बी सूची। इन नवगीतों में हिन्दुस्तान की धड़कन भी है, समय त्रासदी, संस्कृति, बाजारवाद, वन, आदिवासी, बचपन की अशेष स्मृतियाँ, प्रकृति माधुर्य आदि है। मैं ज्यों-ज्यों नवगीत पढ़ता रहा स्मृतियों में याद आते गये कुमार शिव, नईम, कुमार रविन्द्र, डॉ. इशाक अश्क, चंद्र सेन विराट, तारा दत्त निर्विरोध कुछ नाम उभरे और छूट गये मधुकर गौड़ जैसे लोग जिन्होंने

नवगीतों पर बहुत काम कराये। नाथद्वारा के बाल राष्ट्रीय साहित्यकार सम्मेलन में निराला के नवगीत वीणा वादिनि वर दे से शुरुआत हुई थी। नवगीत में कितने आंदोलनकारियों ने अपनी आहुति दी। मैं डॉ. शम्भुनाथ गुप्त की उदारता को कैसे भूल सकता हूँ पत्रिकाओं में प्रकाशित मेरे नवगीतों के आने पर ही उन्होंने नब्बे के दशक में राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के अंतर्गत प्रथम वर्ष में पढ़ाई जाने वाली 'काव्य संचयन' में राजस्थान की हिन्दी काव्य परंपरा में मेरा नाम उल्लेख किया। जिसके बारे में जानकारी संभवत: बड़े भाई प्रोफेसर हितेश व्यास जी ने मुझे 1997 में थी। नवगीत का यह विशेषांक नि:संदेह शोध संदर्भ में हमेशा याद रखा जाएगा। मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी भोपाल के निदेशक डॉ. विकास दवे सा इसके लिए बधाई के पात्र हैं। यह बात सच है कि वो है तो यह अंक मुझ तक आया है। अपने कार्यकाल में वेद व्यास जी ने राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर में ऐसे प्रयोग किये थे' मधुमति' के हिसाब से, पर साक्षात्कार का कलेवर और सामग्री हमेशा अग्रिम रही है। इस शानदार अंक के लिए आदरणीय डॉ. विकास दवे सा का हृदय से आभार। बधाईयाँ एवं शुभकामनाएँ। **-जितेन्द्र निर्मोही, कोटा (राज.)।**

अभी प्राप्त 'साक्षात्कार' का यह नवगीत विशेषांक अपनी अनुक्रमणिका में दर्ज- 'माखनलाल चतुर्वेदी', 'महाकवि निराला', 'केदारनाथ अग्रवाल' जैसे नामों की वजह से साहित्य प्रेमी पाठकों को बरबस ही आकर्षित करने में सफल है। प्रथमदृष्टया इस विशेषांक में पुराने व नए कवियों/गीतकारों की रचनाओं का संतुलन जिस खूबसूरती से अनुक्रमणिका में पेश किया गया है, उतनी ही सुंदरता से इन रचनाओं के बीच में समीक्षकीय आलेख चस्पा किये गए हैं। 'हृदयेश्वर' की रचना 'गोपीचंदर' पढ़कर कल मेरी बेटी ने मुझसे पूछ लिया 'पापा! यह हरा समंदर और गोपीचंदर क्या है?' मुझे यह यकीन था कि यह कोई पुराना खेल था जो हम भाई-बहनों को हमारे दादा-दादी ने हमारे बचपन में सिखाया था लेकिन मुझे पंक्ति याद नहीं आ रही थी जो इस खेल को खेलते समय बोली जाती थी सुबह मेरे पिताजी ने इस पंक्ति को पूरा किया। इस पत्रिका में कवि हृदयेश्वर का यह गीत 'गोपीचंदर' के माध्यम से, वर्तमान में विलुप्त हुए कई बाल गीतों की व्यथा-कथा लिए हुए प्रौढ़ व बुजुर्ग पाठकों के दिल में पूरी मार्मिकता से पैबस्त होता है। वैसे देखा जाए तो यह व्यथा बचपन से विलुप्त हुए उन बालगीतों की है ही नहीं बल्कि यह व्यथा तो आज के बचपन की है जिसमें से 'पोशम पा की घड़ी' और 'गोपीचंदर का हरा समंदर' गायब है। मैंने अपनी बेटी के सवाल का जवाब उस मछली की तरह ही दिया, जिससे कभी पूछा गया था कि 'कहाँ है पानी?' जरूर इस बार पानी हरे समंदर की जगह मेरी आँखों में था। **-डॉ. वासुदेवन 'शेष'।**

साक्षात्कार का जनवरी फरवरी मार्च, 2022 का अंक मुझे पढ़ने को मिला। 'गंगा जमुनी तहजीब का अर्थ' पर संपादकीय बहुत ही शानदार और जानदार लगा। मंजरी शुक्ला से भेंट वार्ता बहुत पसंद आई। आलेख लोकतंत्र और जीवनमंत्र का मार्गदर्शक, रामचंद्र शुक्ल प्रेम कसौटी, हिन्दी को पटरानी बनाएँगे, और स्वामी दयानंद सरस्वती बेहद पसंद आया। कविताएँ भी बहुत अच्छी लगी। कहानी दुनिया बंधक, सहारा बहुत पसंद आई। पत्रिका का यह अंक भी बहुत शानदार है। आप सभी पाठकों को स्थान दे कर उनका सम्मान बढ़ा रहे हैं। **-बद्री प्रसाद वर्मा अनजान, गोरखपुर (उ.प्र.)।**

अप्रैल, मई, जून 2022 का यह अंक एक ऐतिहासिक अंक हैं। लघुकथा पर इतनी विपुल सामग्री अन्यत्र एक पत्रिका में कहीं कम ही उपलब्ध हो पाती है। आपकी लगन, श्रम और लक्ष्य यहाँ बोल रही है। इसके लिए बधाई। सरकारी या अर्धसरकारी पत्रिकाएँ प्राय: निरीह होकर रह गई हैं। इनके संपादकों में आज वह चेतना देखने को नहीं मिलते, जो 30-40 साल पहले हुआ करती थी। लेकिन साक्षात्कार ने कीर्तिमान स्थापित किया है। अंक पाकर प्रसन्नता होती है। संपादन और पत्रिका की सीमाओं से मैं परिचित हूँ। 1976 तक स्वयं जागृति हिंदी मासिक का चंडीगढ़ में संपादक रहा। लेकिन आज संपादन और संपादकीय नीतियाँ बिगड़ीं और बदली हुई नजर आ रही हैं। -**फूलचंद मानव, जीरकपुर।**

आपके सम्पादन में प्रकाशित हो रहे 'साक्षात्कार' के अंक नियमित रूप से मिल रहे हैं। सभी अंक एक से बढ़कर एक हैं, जिन्हें मैं पढ़ती तो रही परंतु प्रतिभाव देने में अवश्य विलंब होता रहा। मई-जून '21 का अंक मेरे सामने है। जैसा की हर बार होता है, पहली दृष्टि गई आपके संपादकीय पर, देवीप्रसाद मिश्र की कविता 'स्मार्ट सिटी' का जो आपने उल्लेख किया वह आपके संपादकीय कर्म एवं धर्म दोनों ही को पूरी तरह से निभाता है, हार्दिक साधुवाद। इस अंक से और भी बहुत कुछ जानने को मिला। निमाड़ में रहते हुए भी मालवा प्रांत की 1857 के महासमर में असाधारण भूमिका से मैं अनभिज्ञ थी, डॉ.शैलेन्द्र कुमार शर्मा का हार्दिक आभार और अभिनंदन उन्होंने इसका परिचय दिया। सुमन जी को तो बहुत पढ़ा और कई बार सुना भी परंतु कभी वे सशक्त क्रांति के अग्रदूत थे यह भी डॉ. शोभना तिवारी से ज्ञात हुआ उनको भी साधुवाद। शालभंजिका और मोनालिसा का कलात्मक-तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है, यह घनश्याम सक्सेना की सौंदर्य दृष्टि का कमाल है। सुमन बाजपेयी के राहुल सांकृत्यायन वाले संस्मरण ने दिनकर के उन पर लिखे संस्मरण की स्मृति को ताजा कर दिया। अन्य सभी लेख पाठकों के मानस को समृद्ध करने वाले हैं। सभी का हार्दिक अभिनंदन, आपका विशेष अभिनंदन।-**क्रांति कनाटे, वड़ोदरा (गुजरात)।**

अप्रैल-मई-जून 2022 का संयुक्तांक लघुकथा विशेषांक है। निश्चय ही मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा लघुकथा विधा के लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम हुआ है। आज लघुकथाएँ बहुत तेजी से आधुनिक माध्यमों पर प्रचारित-प्रसारित हो रही हैं। और इनके लिए भी वही कहना उचित है जो बिहारी के दोहों के लिए कहा जाता है। 'देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर' यह कहना है संपादकीय में विकास दवे जी का। लेकिन साथ ही वो यह भी कहते हैं छोटे आकार के नाम पर कुछ भी परोस देना लघुकथा नहीं है। साक्षात्कार की शृंखला में पहला साक्षात्कार कांता रॉय जी का है। साक्षात्कार की अगली मध्य प्रदेश शृंखला क्षितिज के संपादक एवं प्रतिस्थापित लघुकथाकार सतीश दुबे जी कहते हैं कि लघुकथा का रचा जाना चैतन्यता, सजगता की बात है। सृजन भूमि और समालोचना में 'बी.एल.आच्छा' का अतिमहत्त्वपूर्ण आलेख है। वो साहित्य की किसी भी विधा में नवोन्मेषी प्रयोगशीलता की माँग करते हैं। किसी भी विधा का उन्नयन तभी संभव है जब उसमें नये-नये प्रयोग हों। 'विनय षडंगी राजाराम' अपने आलेख में कहती हैं कथा के तंतु वेदों से ही पाये जाते हैं। उसके बाद जातक कथाएँ, पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएँ इसी क्रम को समृद्ध करती हैं। सर्वत्र

कहानी के मूल में हमें भारतीय उद्गम स्पष्ट दिखाई देता है। 'बलराम अग्रवाल' अपने आलेख में लघु के उद्गम के बारे में बात करते हैं। वह कहते हैं कि निश्चित रूप से पहली कथा का जन्म आह्लाद और विस्मय बोध से हुआ है। कथा की उद्गम भूमि के रूप में पहला प्रमाणिक ग्रंथ ऋग्वेद ही सिद्ध होने के कारण संस्कृत साहित्य के साथ कथा का कुछ विशेष सम्बन्ध बनता है। 'अंतरा करवड़े' लघुकथा में बारीक संवेदनाओं को उभारने के साथ ही पाठकों की कमी की ओर इंगित करती हैं। 'सतीश राठी' लघुकथा को आज के समय की सर्वत्र सम्मानित और लोकप्रिय विधा मानते हैं। दस लघुकथाओं से सजी धरोहर में 'शरद जोशी' की 'क्रमशः प्रगति' प्रतीकों से सजी शानदार लघुकथा है जो कदम कदम पर आदमखोर के होने को इंगित करती है। 'जगदीश चंद्र मिश्र' की 'मिट्टी के आदमी' इंसानियत पर करारी चोट है। 'शकुंतला किरण' अपनी लघुकथा में धार्मिक अंधविश्वास पर कड़ा प्रहार करती हैं। पत्रिका में असगर वजाहत, अशोक भाटिया, कमल चोपड़ा, बलराम अग्रवाल, मुकेश वर्मा, रामेश्वर कांबोज' हिमांशु, सुभाष नीरव, मधुदीप गुप्ता, कांता रॉय, योगराज प्रभाकर, सुकेश साहनी, श्याम सुंदर अग्रवाल, उमेश महादोषी, श्याम सुंदर 'दीप्ति', शमीम शर्मा की लघुकथाएँ शिल्प, प्रस्तुतिकरण और कथानक में विलक्षण हैं। लघुकथा की नई पीढ़ी में पारिवारिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विषयों के अलावा कुछ नए समसामयिक विषयों पर भी कलम चलाई है। अनुकूलन, असमंजस, सहजीविता, सीख, संकल्प, हार जीत, ममता कुर्बानी, तुलसी का बिरवा, गरीबी अम्मा अभी जिंदा है, टूटी चप्पल' आदि शिल्प और सहज भाषा से सजी लघुकथाएँ लघुकथा के भविष्य को लेकर निश्चय ही आशान्वित करती हैं। 'भगवती प्रसाद द्विवेदी' लघुकथा के लिए कहते हैं 'लघुकथा की उपयोगिता सदा से रही है और आज यह विधा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा नैतिक अवमूल्यन के इस युग में फालतू लाग-लपेट के बिना कम शब्दों में अधिक से अधिक मानवीय संवेदना की धारदार बात कहने में सक्षम है।' लघुकथा की यही आकारगत विशेषता उसे विशिष्ट और मारक बनाती है। साक्षात्कार का यह अंक हर लघुकथा लेखक के लिए संग्रहणीय तो है ही साथ ही हर लघुकथा पाठक के लिए भी बेहद महत्त्वपूर्ण है।- **डॉक्टर उपमा शर्मा-दिल्ली।**

R.N.I.३०९९३/७६

आज़ादी का अमृत महोत्सव

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)